पर्यावरण
व
जैव प्रौद्योगिकी

(Environment & Biotechnology)

लेखक

डॉ. प्रवीण चन्द्र त्रिवेदी

पी.एच.डी., एफ.बी.एस., एफ.पी.एस.आई., एफ.एन.एस.आई.,
एफ.एल.एस., एफ.बी.आर.एस.

एसोसिएट प्रोफेसर, वनस्पति शास्त्र विभाग,

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

डॉ. मंजु शर्मा

पी.एच.डी.

असिस्टेंट प्रोफेसर, वनस्पति शास्त्र विभाग,

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

लोक प्रकाशन, जयपुर

प्रस्तुत पुस्तक **पर्यावरण व जैव प्रौद्योगिकी** की रचना विज्ञान शिक्षण सुधार योजनान्तर्गत विद्यार्थियों में विज्ञान पढ़ने के प्रति रुचि पैदा करने हेतु तैयार की गई है।

पुस्तक को सरल, स्पष्ट एवं बोधगम्य भाषा में विद्यार्थियों के बौद्धिक स्तर के अनुसार ही लिखा गया है। पुस्तक की शब्दावली में केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय द्वारा प्रस्तावित शब्दावली का ही प्रयोग किया गया है परन्तु साथ ही सामान्य पुस्तकों में उपयोग में लिये जाने वाले हिन्दी के नामों का भी समावेश किया गया है ताकि विद्यार्थी जब अन्य पुस्तकों से अध्ययन करें तो उनको कठिनाई का अनुभव न हो।

पुस्तक में रेखाचित्रों की सुस्पष्टता, सम्पूर्ण नामांकन, सुरचिता, शुद्धता एवं सरलता पर विशेष ध्यान दिया गया है ताकि विषय सामग्री अधिक ग्राह्य हो सके। पुस्तक में हिन्दी पारिभाषिक शब्दों के साथ अंग्रेजी समानार्थक शब्द कोष्ठकों में दिये गये हैं। आशा है यह पुस्तक विद्यार्थीयों को समझने के साथ--साथ उनमें जिज्ञासा उत्पन्न करने में सहायक होगी। पुस्तक के बारे में अपने सुझाव अवश्य भेजे ताकि कमियों का निवारण हो सके।

लेखकगण

विषय-सूची

इकाई–1

अध्याय–1

पादप पारिस्थितिकी

(Plant ecology)

पृथ्वी पर पौधे विभिन्न स्थानों जैसे—पानी, शुष्क मृदा, चट्टानों, बर्फ से ढ़के पहाड़ों पुरानी दिवारों की दरारों आदि पर उगते हैं। पौधों का असमान वितरण विभिन्न प्रकार के वातावरण पर निर्भर करता है। प्रत्येक जीव का स्वरूप, संरचना आदि उसके आनुवंशिकी लक्षणों पर तो निर्भर करते ही हैं, इन पर वातावरण का भी विभिन्न प्रकार से प्रभाव पड़ता है। जीव तथा उसके वातावरण के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन ही परिस्थिति विज्ञान का विषय है।

इकोलोजी (पारिस्थितिकी) शब्द दो ग्रीक शब्दों आइकोस (Oikos) घर (house) तथा लॉगस (logos)= अध्ययन (discourse, study) से मिलकर बना है। **इस शब्द** का प्रयोग सबसे पहले 1865 में **रेटर (Reiter)** (नामके प्राणि विज्ञानी) **ने किया तथा जर्मन जीव विज्ञानी हीकल (Hackel)** ने इसे परिभाषित किया। बाद में अनेक वैज्ञानिकों ने इसका प्रयोग करते हुए अनेक प्रकार से परिभाषित किया। हालांकि जीवों के आपसी पारिवारिक, सामाजिक एवं आवास जलवायु आदि के साथ सम्बन्धों को फ्रांस के जन्तु विज्ञानी **हिलेरे (Hillaire)** व अंग्रेज प्रकृति विज्ञानी **माइवार्ट (Mivart)** ने भी क्रमशः **इथोलाजी (Ethology)** व **हेक्सिकोलोजी (Hexicology)** के रूप में परिभाषित किया था। परन्तु हीकल की परिभाषा के अनुसार इकोलोजी वनस्पति शास्त्र की वह शाखा है जिसके अन्तर्गत पौधों और उसके बाह्य वातावरण के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।

हीकल ने पारिस्थितिकी को परिभाषित करते हुए जीव के " चारों ओर के बाहरी संसार" का संदर्भ दिया था।

—इन्हे भी जानिए—

1. पारिस्थितिकी जनक—**एच. रेटर**
2. भारतीय पारिस्थितिकी के जनक—**आर. मिश्र**
3. 5 जून को **विश्व पर्यावरण दिवस** मनाया जाता है।
4. पारिस्थितिक तन्त्र (Ecosystem) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ए. जी. **टेन्सले ने किया था।**
5. **विश्व वानिकी दिवस** (World Forestry Day) प्रतिवर्ष 21 मार्च को मनाया जाता है।

आजकल इसे (चारों ओर के बाहरी संसार) जीव का **वातावरण** (Environment) कहा जाता है। वातावरण की कार्बनिक एवं अकार्बनिक अवस्थाओं को क्रमशः **बायोटिक (Biotic) एवं अबायोटिक (Abiotic)** वातावरणीय कारक के नाम से जाना जाता है। बायोटिक कारकों में समान या विभिन्न जातियों के अन्य जीव तथा अबायोटिक कारकों के अन्तर्गत भौतिक एवं रसायनिक स्थितियों यथा ताप, आर्द्रता आदि आते हैं।

पारिस्थितिकी की शाखायें—पारिस्थिति विज्ञान की निम्न चार प्रमुख शाखायें हैं—

(1) स्वपारिस्थितिकी (Autecology)—इसके अन्तर्गत किसी एक पौधे का किसी एक जाति विशेष के पौधों और उनके वातावरण के सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है।

(2) समुदाय पारिस्थितिकी (Synecology)—किसी विशेष स्थान पर पाये जाने वाले समस्त प्रकार के पौधों अर्थात् पादप समुदाय (Plant community) और वातावरण के सम्बन्धों का इसके अन्तर्गत अध्ययन करते हैं।

(3) इकोसिस्टेमोलोजी (Ecosystemology or Ecosystem Ecology)—किसी स्थान विशेष के समस्त जीव, भौतिक प्रक्रियाओं तथा रासायनिक तन्त्रों या चक्रों के सम्मिलित अध्ययन को पारिस्थितिक तंत्र पारिस्थितिकी (Ecosystem Ecology) कहते हैं।

(4) बायोम पारिस्थितिकी (Biome Ecology)—किसी स्थान विशेष पर कई बार अनेक प्रकार के पादप समुदाय (Many plant communities) पायी जाती हैं। सभी पादप समुदाय जो एक ही प्रकार को वातावरण में रहते हैं, के आपसी क्रियाओं प्रतिक्रियाओं और सम्बन्धों के अध्ययन को बायाम पारिस्थितिकी कहते हैं।

उपरोक्त तीन के अलावा कुछ अन्य स्वरूपों में भी पारिस्थितिकी का अध्ययन किया जाता है जैसे—

(1) प्रदूषण पारिस्थितिकी (Pollution Ecology)—किसी भी स्थान पर प्रदूषण का जीवों व वातावरण पर प्रभाव का अध्ययन।

(2) अंतरिक्ष पारिस्थितिकी—अंतरिक्षीय परिवर्तनों का जीव व वातावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन।

(3) जीन पारिस्थितिकी (Gene Ecology)—किसी स्थान पर एक या अनेक जीनों में आनुवंशिकी समता के आधार पर वातावरण के अनुसार उत्पन्न होने वाली विभिन्नताओं का अध्ययन।

(4) विकीरण पारिस्थितिकी (Radiation Ecology)—बिकीरणों एवं विघटाभिक पदार्थों (Radioactive substances) के जीवों और वातावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन।

(5) पुरापारिस्थितिकी (Paleo Ecology)—जीवाश्मों का पारिस्थितकी दृष्टिकोण से अध्ययन।

(6) व्यावहारिक पारिस्थितिकी (Applied Ecology)—वन संरक्षण (Forest

conservation), मृदा अपरदनों (Soil erosion and Soil Conservation), वन्य जीव प्रबन्धन एवं संरक्षण (Wild life management) आदि के बारे में अध्ययन।

वातावरण : पारिस्थितिक कारक (Environment : Ecological Factos)

एक पौधे या उसके समुदाय के चारों ओर पाया जाने वाला जैविक, भौतिक या रासायनिक बल, प्रक्रिया, दशा या वस्तु जो उसे **सीधे** (Direct) या दूसरे कारकों को प्रभावित करके **परोक्ष (Indirect)** रूप से प्रभावित करता है, उस पौधे क्या उसके समुदाय का वातावरण का अंग या कारक (Factor) कहते है। इन कारकों को वातावरणीय कारक या पारिस्थितिक कारक भी कहते हैं।

जल, प्रकाश, ताप, खनिज पदार्थ, वायु तथा आर्द्रता आदि कारक जीवों पर सीधा प्रभाव डालते हैं, अतः इन्हें **प्रत्यक्ष (Direct)** कारक कहते हैं। मृदा, वर्षा, समुद्र, पर्वत, अक्षांश आदि कारक अन्य कारकों को प्रभावित करके जैविक प्रक्रियाओं को प्रभावित करते हैं अतः अन्हें **परोक्ष या अप्रत्यक्ष (Indirect)** कारक कहते हैं। कारक आपस में भी एक दूसरे पर प्रभाव डालते हैं तथा वातावरण में एक जटिल तंत्र का निर्माण करते हैं जिसे Environmental complex कहते हें। प्रकृति में जीवों पर सभी कारकों का सामूहिक प्रभाव पड़ता है तथा सभी कारक एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। इसलिए वास्तव में किसी एक समय में किसी एक कारक के प्रभाव को दर्शाना कठिन होता है फिर भी प्रत्येक कारक का पौधे पर प्रभाव जानने के लिए अलग-अलग वर्णन दिया जाता है। अधिकतर परिस्थति वैज्ञानिक विभिन्न कारकों को निम्न चार प्रकारों में विभक्त करते हैं—

(1) जलवायुवीय कारक (Climatic or Aerial Factors)—इसके अन्तर्गत निम्न कारक आते हैं—
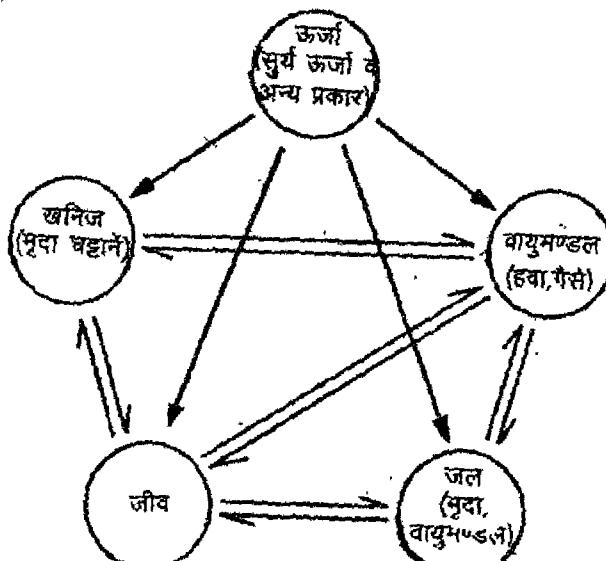
चित्र 1.1 वातावरण के प्रमुख घटकों के बीच अन्तरसम्बन्ध

"वातावरण के विभिन्न घटकों के आपसी सम्बन्ध"

(i) प्रकाश (Light)

(ii) ताप (Temperature of air, or Atmospheric temperature)

(iii) वर्षा (Rainfall or Precipitation)

(iv) आर्द्रता (Humidity of air)

(v) वायुमंडलीय गैसें (Atmospheric Gases)

(vi) वायु-गति (Wind-velocity)

(vii) अग्नि (Fire)

(2) भू-आकृतिक कारक (Topographic or Physiographic factor
इसके अन्तर्गत निम्न कारक आते हैं—

(i) भूमि की ऊँचाई (Altitude)

(ii) पर्वतमालाओं व घाटियों की दिशा (Direction of mountains
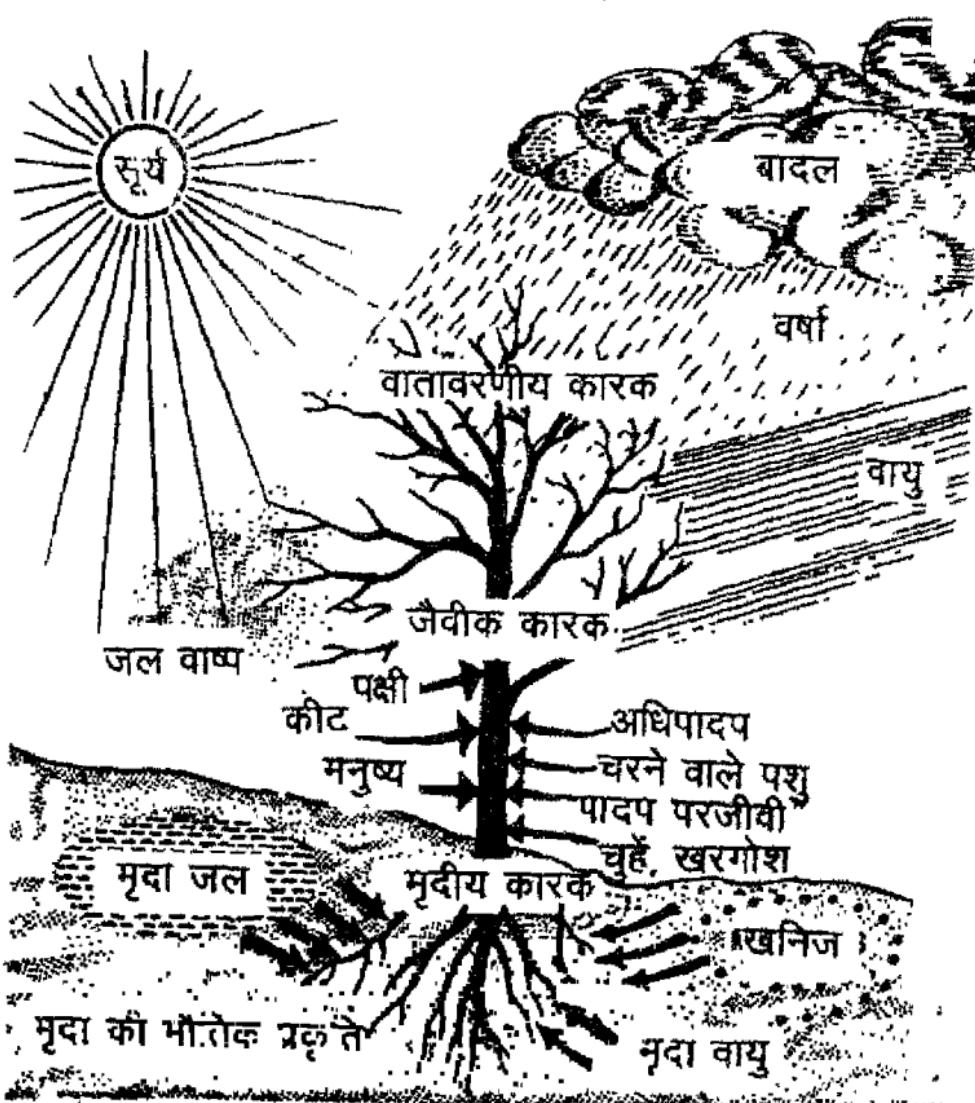
चित्र 1.2 विभिन्न वातावरणीय कारको का पोधों पर प्रभाव

मि का खुलाव (Exposure of slopes)
मि का ढाल (Slopes)
वेक कारक (Biotic Factors)
दीय कारक (Edaphic Factors)
नव कारक (Human Factor)

(1) जलवायुवीय कारक (Climatic Factors)

प्रकाश (Light)

वाष्पोत्सर्जन, प्रकाश संश्लेषण, अंकुरण तथा पुष्पीकरण जैसी आधारभूत । सीधी प्रभावित करता है अतः यह एक महत्वपूर्ण कारक है। सम्पूर्ण पृथ्वी पर सूर्य से ही प्राप्त होती है। पृथ्वी पर पहुँचने वाला प्रकाश र्णो, वायु में निलंबित कणों, पानी की परतों, वनस्पति, तथा स्थलाकृतिक वित होता है। सूर्य का प्रकाश जो पत्ती पर पड़ता है का 5% पारगत), 12% परावर्तित (reflected) अवं 83% पत्ती द्वारा अवशोषित होता है। इस अवशोषित भाग का केवल 4% भाग ही पर्णहरित द्वारा
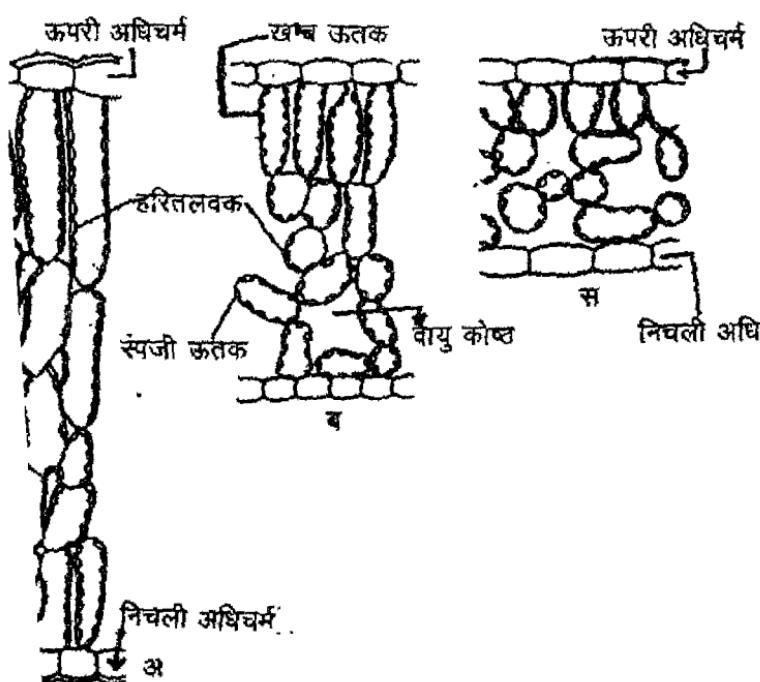
। 3 एलिनेनिया लिनेरिस की पत्ती में खंभ ऊतक, स्पंजी ऊतक और हरिमकणकों की स्थिति

प्रकाशित पत्ती (ब) मामूली साये में स्थित पत्ती (स) पूर्ण साये में स्थित पत्त

प्रकाश संश्लेषण में उपयोग में लिया जाता है, शेष 79% ताप के रूप में खो दिया जाता है। प्रकाश तीन उप-कारकों—किरणों की लम्बाई या गुण (quality), मात्रा (quantity) एव अवधि (duration) अथवा दीप्ति काल (photoperiod) के रूप में पौधों को प्रभावित करता है।

प्रकाश का गुण—सूर्य का प्रकाश सात रंगों से मिलकर बनता है। प्रकाश तरंगें जिस माध्यम में से गुजरती हैं उसके अनुसार प्रकाश का गुण बदल सकता है। प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया नीले व लाल रंगों से अत्यधिक प्रभावित होती है। लाल प्रकाश पौधों के बीजों के अंकुरण को प्रभावित करता है। नीला व बैंगनी रंग पौधों की विभिन्न गतिविधियों को प्रभावित करते हैं। हरा व पीला रंग सामान्यतः पौधे के उपयोग का नहीं होता।

प्रकाश की मात्रा—समद्री तल की अपेक्षा ऊँचाई वाले स्थानों पर अधिक प्रकाश की मात्रा पहुँचती है। ध्रुवो से भूमध्य रेखा की ओर प्रकाश की मात्रा बढ़ती है। पानी की सतह से गहराई की ओर प्रकाश की मात्रा कम होती है। इस प्रकार सूर्य से पृथ्वी की दूरी, वायु में वाष्प व अन्य गन्दगी, बादल, पृथ्वी की बनावट, ढ़ाल, पहाड़ों की दिशा आदि प्रकाश की मात्रा को प्रभावित करते हैं।

दीप्ति काल—दीप्ति काल प्रतिदिन का वह समय है जिसके लिए कोई पौधा प्रकाश प्राप्त करता है। यह पौधों के फूलने-फलने एवं उनके भौगोलिक वितरण को प्रभावित करता है।

प्रकाश के निम्न प्रभाव पौधे के जीवन पर पड़ते हैं—

(i) **क्लोरोफिल की उत्पत्ति**—अधिकतर पौधों में प्रकाश की उपस्थिति में ही क्लोरोफिल का निर्माण होता है, कुछ शैवाल एवं मॉस, फर्न की नई पत्तियाँ एवं कॉमीफर्स के सीडलिंग इसके अपवाद हैं जिनमें प्रकाश की अनुपस्थिति में भी क्लोरोफिल का निर्माण हो जाता है।

(ii) **वाष्पोत्सर्जन पर प्रभाव**—प्रकाश के कारण ताप पर प्रभाव पड़ता है जो सीधे वाष्पोत्सर्जन को प्रभावित करता है तथा वाष्पोत्सर्जन जड़ों द्वारा अवशोषण को प्रभावित करता है।

(iii) पौधे के वायुवीय भागों का ताप प्रकाश के कारण प्रभावित होता है जिससे पौधे की विभिन्न प्रक्रियायें प्रभावित होती हैं।

(iv) **रन्ध्रगति पर प्रभाव**—प्रकाश दैनिक रन्ध्रगति को प्रभावित करता है। अत इस माध्यम से भी वाष्पोत्सर्जन एवं अवशोषण को प्रभावित करता है।

(v) **पादप अनुक्रमण**—कई बार मृदा व ताप के माध्यम से पादप अनुक्रमण की क्रिया को भी प्रकाश आंशिक रूप से प्रभावित करता है।

(vi) पौधे के विभिन्न भागों के **विकास** में प्रकाश का प्रभाव पड़ता है। पौधों को उनकी आनुपातिक प्रकाशीय आवश्यकता एवं उसके प्रभाव के अनुसार होने वाले विकास के आधार पर निम्न वर्गों में बाँटा जाता है—

(अ) **प्रकाश-प्रिय या सूर्यतापी पौधे** (Photophilous Sunlovmg = light

, = Heliophytes)—ये पौधे प्रकाश में सामान्य वृद्धि करते हैं तथा छाया में प्रकार नहीं उगते। उदाहरण—सूर्यमुखी, वृक्ष।

(ब) छाया-प्रिय या छायातापी पौधे (Sciophilous or Heliophobous ;)—ये पौधे छाया में अच्छी प्रकार से उगते हैं। उदहारण—**पाइसिया** (Picea), **टेक्सस** आदि।

प्रकाश-प्रिय एवं छायाप्रिय पौधों की सरंचना आदि में अन्तर

प्रकाशप्रिय या सूर्यतापी पौधे (Heliophytes)	**छाया-प्रिय या छायातापी पौधे (Sciophytes)**
पौधे का शुष्क भार अधिक होता है।	पौधे का शुष्क भार कम होता है।
तना मोटा व कठोर होता है तथा इसमें जाइलम अधिक विकसित होता है।	तना पतला व कोमल होता है।
पर्व छोटे होते हैं।	पर्व लम्बे होते हैं।
इनमें अधिक शाखायें निकलती हैं।	शाखाएँ अपेक्षाकृत कम निकलती हैं।
तने, पत्तियों आदि पर रोम अधिक होते हैं।	कम रोम पाये जाते हैं।
जड़ें लम्बी व अधिक संख्या में होती हैं। मूल/प्ररोह अनुपात अधिक।	जड़ें कम व छोटी। मूल/प्ररोह अनुपात कम।
पत्तियाँ छोटी एवं मोटी होती हैं। शिरायें एवं पर्ण-रन्ध्र छोटे एवं पास-पास होते हैं।	पत्तियाँ बड़ी एवं पतली होती हैं। पर्णरन्ध्र व शिरायें बड़ी-बड़ी एवं दूर-दूर होती हैं।
अन्तरकोशिय स्थान छोटे।	अन्तर कोशिय स्थान बड़े।
अधिक विकसित खम्भ ऊतक।	कम विकसित खम्भ ऊतक।
प्रकाश संश्लेषण की दर कम।	प्रकाश संश्लेषण की दर अधिक।
श्वसन एवं वाष्पोत्सर्जन की दर अधिक।	श्वसन एवं वाष्पोत्सर्जन की दर कम।
. कोशिकाओं का परासरण दाब अधिक।	कोशिकाओं का परासरण दाब कम।
. पत्तियों की कोशिकाएँ छोटी होती हैं तथा कोशिका भित्ति मोटी होती हैं।	कोशिकाएँ बड़ी होती हैं। कोशिका-भित्ति पतली होती है।
. हरित लवक कम होते हैं।	हरित लवक अधिक होते हैं।

क्र.सं.	प्रकाशप्रिय या सूर्यतापी पौधे (Heliophytes)	छाया-प्रिय या छायातापी पौधे (Sciophytes)
15.	कोशिका रस अधिक अम्लीय होता है।	कोशिका रस कम अम्लीय होता है।
16.	यांत्रिक ऊतक अधिक विकसित होते हैं।	यांत्रिक ऊतक कम विकसित होते हैं।
17.	अधिक फूलते-फलते हैं।	कम फूलते-फलते हैं।
18.	पुष्पकाल जल्दी आता है।	पुष्पकाल देर से आता है।
19.	पत्तियों की बाह्य त्वचा मोटी होती है।	पत्तियों की बाह्य त्वचा पतली होती है।
20.	शुष्कता व ताप से बचने की अधिक क्षमता।	शुष्कता व ताप से बचने की कम क्षमता।

(vii) पौधों का भू-वितरण B—ध्रुवों व भूमध्य रेखा पर वनस्पति में अन्तर होता है। ध्रुवों से भूमध्य रेखा की ओर प्रकाश की मात्रा बढ़ती है। फलतः ताप भी बढ़ता है। इनका प्रभाव पौधों की वृद्धि पर पड़ता है।

(viii) **दीप्तिकालिता (Photoperiodism)**—दीप्तिकाल पौधों के भौगोलिक वितरण, वृद्धि एवं पुष्प तथा फल लगने की क्रिया को प्रभावित करता है। इस क्रिया विधि को दीप्तिकालिता (Photoperiodism) कहते हैं। फूलने-फलने के लिए दीप्तिकाल की आवश्यकता के आधार पर पौधों को निम्न वर्गों में बाँटा जाता है—

(1) **अल्प प्रकाशीय पौधे (Short-day plants)**—इन पौधों को पुष्पन हेतु निर्णायक दीप्तिकाल (critical photoperiod, between 12-14 hrs.) से कम अवधि की आवश्यकता होती है। उदाहरण **सालविया,** धतुरा, **एन्ड्रोपोगोन, कोसमोस,** सोयाबीनआदि।

(2) **दीर्घ प्रकाशीय पौधे (Long-day plants)**—जिन्हें पुष्पन के लिए निर्णायक दीप्तिकाल से अधिक अवधि के दीप्तिकाल की आवश्यकता होती है। उदाहरण **ब्रासीका, स्पाइनेच, नाइजेला, सोर्गम** इत्यादि।

(3) **प्रकाश-अप्रभावी या दीप्तिकाल अप्रभावी पोधे (Day-neutral plants)**—जिन पर पुष्पन के लिए दीप्तिकाल का कोई प्रभाव नहीं होता। उदाहरण टमाटर, **निकोटियाना** मिर्च, पोआ आदि।

(4) **अल्प-दीर्घ-प्रकाशीय पौधे (Short-long day plants)**—जिन पौधों को पुष्पन हेतु पहले कुछ समय तक अल्प दीप्तिकाल एवं बाद में दीर्घ दीप्तिकाल की आवश्यकता होती है। उदाहरण गेहूँ।

(5) **दीर्घ-अल्प-प्रकाशीय पौधे (Long-short-day plants)**—जिन्हें पुष्पन के लिए पहले अधिक व बाद में अल्प अवधि के दीप्तिकाल की आवश्यकता होती है। उदाहरण—ब्रायोफिल्म।

(6) **एम्फीफोटोमिरियोडिक पौधे (Amphiphotoperiodic plants)**—**मीडिया**

एलीगेन्स पौधे को पुष्पन के लिए 12 घंटे से कम या 16 घंटे से अधिक प्रकाश की आवश्यकता होती है।

(2) **ताप (Temperature)**

पौधों की सभी जीवन-क्रियाओं पर ताप का प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पड़ता है। सामान्यतः 0 से 50° से. के मध्य ही जीवन-क्रियायें सम्पन्न होती हैं। इससे कम या अधिक ताप पर जीवन-क्रियायें कम हो जाती हैं या एकदम रुक जाती हैं।

ताप के स्रोत—वातावरण में सूर्य ताप का सबसे बड़ा स्रोत है। सूर्य के प्रकाश से वायु, जल, मिट्टी के कण पौधों की सतह आदि को गर्मी मिलती है। पृथ्वी स्वयं भी ताप का स्रोत है। सूर्य का प्रकाश जब जल तथा मिट्टी पर पड़ता है तो उसका अधिकतर भाग पृथ्वी द्वारा अवशोषित हो जाता है तथा बाद में ताप के रूप में पृथ्वी की सतह से वायुमंडल में निकलता है। इसी प्रकार पृथ्वी के अन्दर की गर्मी भी ज्वालामुखी उद्‌गारों के रूप में वायुमंडल का ताप बढ़ाती हैं। ताप का तीसरा स्रोत जीवधारी हैं जिनकी श्वसन क्रिया से कुछ ताप निकलता है। कुछ सूक्ष्म जीव मिट्टी के अन्दर ताप का उत्पादन करते हैं।

ताप के प्रभाव—पृथ्वी की चट्टानों का टूटकर छोटे कण एवं बाद में मिट्टी का निर्माण, हवा में गति, वाष्पन, वर्षा, समुद्री पानी में धाराओं का संचालन आदि ताप के कारण ही संभव होता है। ताप के निम्न प्रभाव पौधों में देखने को मिलते हैं—

(1) ताप एन्जाइम्स की क्रिया विधि को प्रभावित करता है। अतः सभी जैविक-क्रियायें एवं पौधे के कुल शारीरिक विकास एवं संरचना को ताप प्रभावित करता है।

(2) बीजों के पकने एवं अंकुरण पर प्रभाव। कुछ पौधों के बीजों को अंकुरण के लिए शीत व ताप में थोड़ी-थोड़ी देर रखना पड़ता है।

(3) अंकुर पर ताप का अत्यधिक प्रभाव होता है। लेकिन धीरे-धीरे पौधें के प्रौढ़ होने के साथ-साथ ताप का असर कम होता है। इसे दृढ़करण (Hardening) कहते हैं।

(4) वाष्पोत्सर्जन की क्रिया ताप बढ़ने पर बढ़ती है।

(5) पौधों के प्रजनन पर ताप प्रभाव डालता है। दिन-रात के ताप से कुछ पौधों के बढ़ने व पुष्पन पर प्रभाव पड़ता है। इसे थर्मोपीरियोडिज्म (Thermoperiodism) कहते हैं।

(6) कुछ पौधों के अंकुरित बीजों को एक निश्चित समय के लिए कम ताप पर रखा जाता है। इससे इनकी कायिक वृद्धि की अवधि में कमी हो जाती है तथा पुष्पन शीघ्र हो जाता है। इसे बसन्तीकरण (Vernalisation) कहते हैं। उत्तरी अक्षांश के देशों में "शीत गेहूँ" एवं "बसन्ती गेहूँ" बोए जाते हैं। "शीत गेहूँ" अक्टूबर-नवम्बर में बोये जाते हैं। इनके अंकुर बर्फ से ढ़क जाते हैं। गर्मी आने पर बर्फ पिघलती है और पौधे वृद्धि करते हैं। "बसन्ती गेहूँ" जाड़ों के अन्त में बोया जाता है। दोनों प्रकार के गेहूँ के बीज गर्मी में पककर तैयार होते हैं परन्तु "शीत गेहूँ" को अधिक समय पृथ्वी पर रहना पडता है। अतः इसके भीगे हुए बीजों को यदि 10–12 दिन तक 3° से. ताप पर रखकर

-गेहूँ" के साथ ही बो देते हैं तो इसका बीज भी "बसन्ती गेहूँ" के स
। जाता है।

(7) पृथ्वी पर किसी भी स्थान का ताप उस स्थान की भूमध्य रेखा
पर निर्भर करता है। ध्रुवों पर सूर्य किरणों को पहुँचने में भूमध्य-रेख
समय लगता है अतः ध्रुवों पर ताप कम और मध्य रेखा पर अधि
प्रभाव वनस्पति पर पड़ता है। ताप के आधार पर पृथ्वी की वनस्प
। वर्गीकृत किया जाता है—
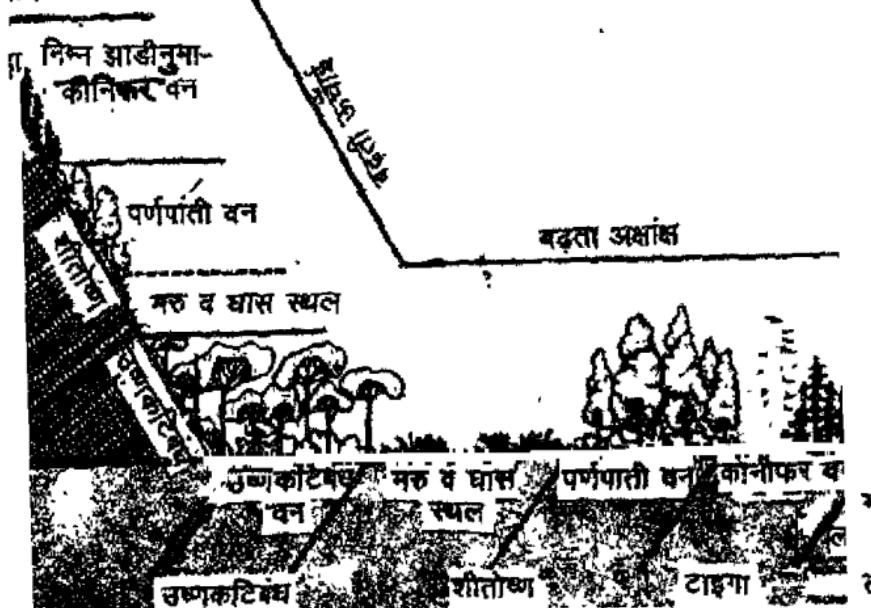
चित्र 1.4 विषुवत् रेखा से ध्रुवों की ओर एवं पर्वतो की विभिन्न ऊँचाइयों पर वनस्

(a) महातापी (Megaterms)—जिन पौधों को अपने वृद्धि एवं वि
तार अधिक ताप की आवश्यकता होती है। उदाहरण कटिबन्धीय वर्षाव
orest)।

(b) मध्यतापी (Mesotherms)—जिन्हें गर्मी का उच्च व सर्दी का
क्रम में चाहिए। उदहारण—उष्णकटिबन्धीय पर्णपाती वन (Tropical
।

(c) न्यूनतापी (Microtherms)—जो पौधे कम ताप पर अपनी वृद्धि
। उदाहरण—मिश्रित शंकु वन (Mixed cone forests)।

(d) अति न्यूनतापी (Hekistotherms)—जिन पौधों को वर्षभर अ
हेतु कम ताप चाहिए ये पौधे पर्वतीय (alpine) एवं उत्तर ध्रुव (ar
जाते हैं।

(8) अतिशीत या अति उच्च ताप पौधों को नुकसान पहुँचाता है।
र्जन की दर बढ़ जाती है। इसलिए कोशिकाओं में जल की कमी
कों को क्षति पहुँचती है। इसे सूखना (desiccation) कहते हैं। अ

ार अन्तरकोशिय स्थानों में पानी जम जाता है और ऊतकों को क्षति पहुँचती
ling injury) कहते हैं। कई बार कोशिकाओं के अन्दर बर्फ जम जाती है
ो मृत्यु भी हो जाती है। इसे हिमांक क्षति (Freezing injury) कहते हैं।
तिशीत को भी सहन कर सकते हैं। इसे शीत प्रतिबन्धन (Cold resistance)

वर्षा (Rainfall or Precipitation)

जल का मुख्य स्रोत वर्षा होती है। वायुमंडल और पृथ्वी की तह के बीच
ान-प्रदान एक चक्र (Hydrologic or water cycle) के रूप में होता है।
, तालाबों, झीलों व पौधों से जल वाष्प बनकर बादलों के रूप में बदल आता
से जल वर्षा के रूप में फिर पृथ्वी पर आता है। इस जल का कुछ भाग
ा नदियों-नालों के माध्यम से वापस समुद्र में तथा कुछ पौधों की जड़ों द्वारा
र लिया जाता है। इस प्रकार प्रकृति में जल का चक्र चलता रहता है।
ी पर सभी जगह समान मात्रा में वर्षा नहीं होती। वर्षा की मात्रा का स्थान
नस्पति पर सीधा प्रभाव पड़ता है। पूरे साल में होने वाली वर्षा की मात्रा
व का असर भी वनस्पति पर पड़ता है। उष्ण कटिबन्धीय (Tropical) भागों
धक वर्षा और अधिक ताप से घने जंगल बनते हैं। कम ताप और अधिक
के पेड़, झाड़ियाँ आदि वनस्पति उगती है। अधिक ताप और कम वर्षा में
uphorbia), नागफनी (Opuntia) आदि पौधे मिलते हैं। ऊँचे पर्वतों पर
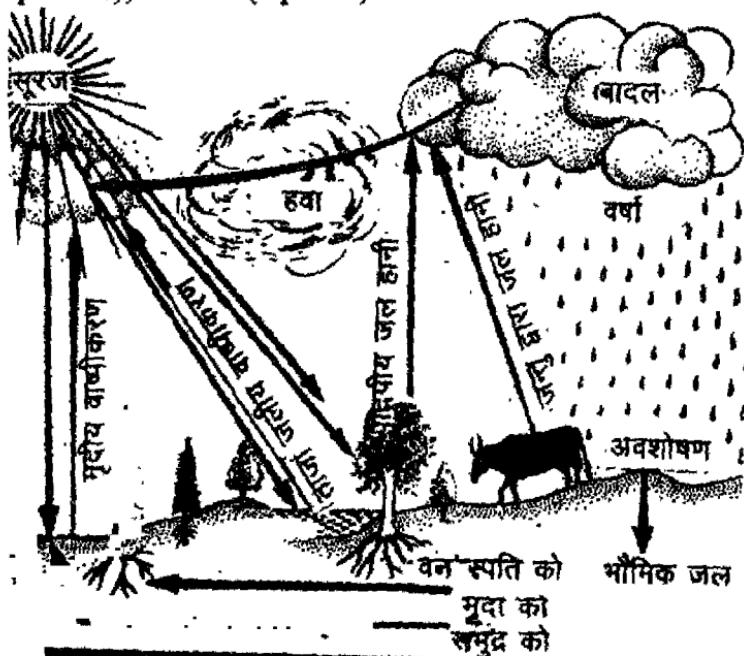
चित्र 1.5 प्रकृति मे जल चक्र

तीन प्रकार की वर्षा की स्थिति होती है—(i) नीचे के भाग में बहुत कम (ii) बीच के भाग में काफी और ऊपर के भाग में जो बादलों की ऊँचाई से ऊपर होता है, बर्फ जमी होती है। पहाड़ों की ऊँचाई के अनुसार वर्षा की मात्रा, ताप आदि का वनस्पति पर प्रभाव पड़ता है।

हवा की आर्द्रता या वायुमंडलीय नमी **(Humidity of air or Atmospheric moisture)** अदृश्य वाष्प के रूप में वायुमंडल की नमी को आर्द्रता कहते हैं। यह सामान्यतः आपेक्षिक आर्द्रता (relative humidity) के रूप में दर्शायी जाती है। यह किसी दिये हुए ताप पर वास्तविक आर्दता और संतृप्त स्थिति की आर्दता के अनुपात का प्रतिशत होती है। किसी विशिष्ट ताप व दाब पर जितना संभव उतनी नमी यदि वायु में है तो यह संतृप्त (saturated) अवस्था कहलाती है। ताप और दाब के परिवर्तन से संतृप्त अवस्था में परिवर्तन होता है। पौधे के जीवन के लिए आर्द्रता का एक महत्त्वपूर्ण प्रभाव होता है। वाष्पोत्सर्जन, अवशोषण जैसी प्रक्रियाओं पर आर्दता का सीधा प्रभाव पडता है। अधिक आपेक्षिक आर्द्रता वाले स्थानों में ही उगने वाले पौधों को आर्द्रतोद्भिद् (hygrophytes) कहते हैं। जबकि कम आपेक्षिक आर्द्रता वाले स्थानों पर उगने वाले पौधों में वाष्पोत्सर्जन रोकने के लिए अनेक प्रकार के परिवर्तन (adaptations) मिलते हैं।

वायुमण्डलीय गैसें (Atmospheric Gases)

पृथ्वी सतह से करीब 300 कि. मी. ऊँचाई तक कुछ गैसें मिलती हैं। लेकिन वायुमंडल की कुल वायु का 95% भाग केवल सतह से 20 किमी. ऊँचाई तक मिलता है। यही भाग मौसम को प्रभावित करता है तथा पौधों पर भी प्रभाव डालता है। वायु में मुख्य रूप से नाइट्रोजन, ऑक्सीजन,कार्बन-डाईऑक्साइड तथा अन्य गैसें होती हैं। इनके अलावा वाष्प, धूलकण, धुँआ व कारखानों से निकलने वाली विभिन्न गैसें भी होती हैं। परागकण, कवक स्पोर, सूक्ष्म-जीव भी वायु में निलंबित अवस्था में मिलते हैं।

नाइट्रोजन (N_2)	वायु के आयतन का 78%
ऑक्सीजन (O_2)	वायु के आयतन का 21%
ऑर्गन	वायु के आयतन का 1%
कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2)	वायु के आयतन का 0.03%
हाईड्रोजन (H_2)	वायु के आयतन का 0.00006%
ऑजोन	वायु के आयतन का 0.000004%
जल वाष्प (H_2O)	वायु के आयतन का 0.1–0%

कार्बन डाई ऑक्साइड, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन आदि गैसें प्रकृति में चक्रीय (cycling) अवस्था में रहती हैं।

वायु-गति (Wind-velocity)

बहती हुई हवा को वायु (wind) कहते हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण वायुमंडलीय कारक है। मैदानी भागों, समुद्री किनारे और पहाड़ों की ऊँचाई पर वायु की गति का

चित्र 1 .6 पौधों पर वायु का प्रभाव

सीधा प्रभाव पौधों पर पड़ता है। वाष्पोत्सर्जन, पराग कणों, बीजों तथा फलों के वितरण के वायु-गति प्रभावित करती है। वायु उच्च वायु दाब से कम वायु दाब की ओर बहती है तथा यह दबाव का अन्तर ताप आदि कारकों द्वारा निर्धारित होता है। सामान्यत: वायु ध्रुवों से भूमध्य रेखा की ओर बहती है। तेज गति वायु से पौधों की शाखायें, तने आदि टूट जाते हैं या सम्पूर्ण पौधा उखड़ जाता है। इसे **विंडफाल (Wind fall या Wind throws)** कहते हैं। लगातार किसी एक दिशा से तेज हवा के कारण पौधों में विभिन्न विकार (*Deformation*) पैदा हो जाते हैं। वृक्षों की शाखायें एक ओर झुककर विकास करती हैं। इन पौधों में झुकी हुई तरफ गहरी, लाल जाइलम का निर्माण होता है जिसे कम्प्रेशन वुड (Compression wood) कहते हैं। समुद्र के किनारे या पर्वतों पर तेज हवाओं के कारण पौधों की शाखाएँ प्रायः एक ओर से निकलती हैं क्योंकि जिस ओर से हवा चलती है उधर की शाखाएँ पनप नहीं पातीं। घास, गेहूँ, गन्ना आदि के पौधे तेज हवा के कारण पृथ्वी की सतह के समानान्तर झुक जाते हैं झुकाव (Lodging) ।तेज हवायें मिट्टी की परतों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर उड़ा ले जाती हैं मृदा क्षरण (Soil erosion)।

अग्नि कारक (Fire factor)

कई बार जंगलों में पेड़ों के आपस में रगड़ने या मनुष्य की विभिन्न गतिविधियों के फलस्वरूप हुई अग्नि पौधों को नुकसान पहुँचाती है। कुछ एस्कोमाइसीट्स (Ascomycetes) कवक (उदहारण—**Pyronema confluens**) जले हुए क्षेत्रों में उगती है। इन्हें पायरोफिलस (*Pyrophilous*) कवक कहते हैं।

भू-आकृतिक कारक
(Topographic Factors)

पृथ्वी की सतह सब स्थानों पर बराबर नहीं होती। पर्वतोंमालाओं की ऊँचाई एवं दिशा, भूमि का ढ़ाल तथा खुलाव एवं भूमध्य रेखा से दूरी आदि स्थलाकृतिक कारक पौधों के जीवन एवं विकास को विभिन्न वायुमंडलीय कारकों (प्रकाश, ताप, आर्द्रता, वर्षा, वायु गति आदि) के माध्यम से प्रभावित करते हैं।

(i) भूमि की ऊँचाई (Altitude)—समुद्री सतह से ऊँचाई की ओर वायु दाब, वायु-गति, आर्द्रता, प्रकाश की तीव्रता तथा तापक्रम में परिवर्तन आते हैं। (प्रति 1000 मी ऊँचाई पर 6–7° से. तापक्रम की गिरावट आती है।) इनमें परिवर्तनों के कारण विभिन्न ऊँचाई पर वनस्पति में भिन्नताएँ आ जाती हैं।

(ii) पर्वतमालाओं की दिशा (Direction of mountain chains) – नम हवाओं की दिशा पर्वतों के कारण बदल जाती है। साथ ही हवा की कुछ नमी पर्वत सोखते हैं। अतः नमी वाले देश में अच्छी वनस्पति उगती हैं। परन्तु इसकी विपरीत दिशा में मरुद्भिद् वनस्पति विकसित हो पाती है।
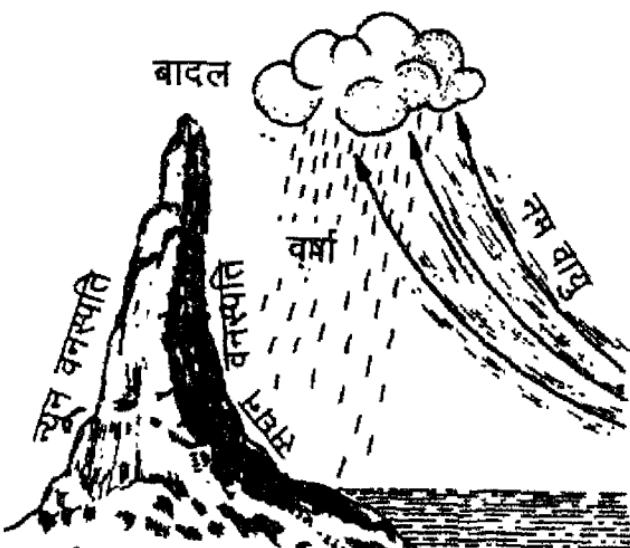
चित्र 1 .7 पर्वतमाला की दिशा का वनस्पति वितरण पर प्रभाव

(iii) भूमि का ढाल (Slope)—ढलवाँ भूमि पर पानी का ठहराव नहीं होता। अधिक ढलवाँ भूमि पर वर्षा का जल तेजी से बहता है तो मिट्टी का क्षरण (Soil erosion) होता है। अतः इन स्थानों पर वनस्पति कम विकसित हो पाती है।

(iv) ढलवाँ भूमि का खुलाव (Exposure of slope)—ढलवाँ भूमि का खुलाव यदि वायु दिशा एवं सूर्य के प्रकाश की तरफ होता है तो उस स्थान पर घनी वनस्पति विकसित होती है। सूर्य प्रकाश के विपरीत दिशा के खुलाव पर वनस्पति कम उगती है।

हिमालय की दक्षिणी व उत्तरी ढलानों पर क्रमशः अधिक व कम वनस्पति इसी कारण होती है।

मृदीय कारक (Edaphic factor)

पौधा खनिज पदार्थ एवं जल प्राप्त करने तथा अपने आपको स्थिर करने के लिए जड़ों पर निर्भर करता है। जड़ों पर उपस्थित मूल रोमों द्वारा जड़ जल व खनिज पदार्थों का अवशोषण करती हैं। मूल रोम अपने चारों ओर उपस्थित मिट्टी से जल और खनिज पदार्थ प्राप्त करते हैं। अतः मिट्टी का स्वरूप, उसमें उपस्थित पदार्थ, जल, वायु, ताप आदि अनेक कारक, उपकारक मिलकर मृदा के रूप में पौधे को प्रभावित करते हैं।

मृदा निर्माण—पृथ्वी की ऊपरी सतह मृदा होती है जो एक जटिल तंत्र के रूप मे होती है तथा इसमें लगातार परिवर्तन होते रहते हैं। मृदा का निर्माण दो प्रमुख प्रक्रियाओं से होता है—

(a) **अपक्षय (Weathering)**—बड़ी-बड़ी चट्टानें, भौतिक, रासायनिक व जैविक अभिक्रियाओं के फलस्वरूप छोटे कणों में बदलती हैं। पानी, ताप, ग्लेसियर, गुरुत्वाकर्षण आदि के कारण नम होना—सूखना, गर्म होना—ठंडा होना, बर्फ का जमना, विस्फोट आदि क्रियाएँ होती हैं जिससे चट्टानें टूटती हैं, पिसती है और छोटे-छोटे कणों में बदलती है। हाइड्रेशन (Hydration) हाइड्रोलिसिस (Hydrolysis) ऑक्सीडेशन-रिडक्सन, (Oxidation-reduction), कार्बोनेशन (Carbonation) जैसी रासायनिक अभिक्रियाएँ चट्टानों के खनिज पदार्थों का अपक्षय करती हैं। इस प्रकार बनी मिट्टी यदि उसी स्थान पर रहती है तो उसे **अवशिष्ट मिट्टी (Residual soil)** कहते हैं। यदि यह किसी अन्य स्थान पर जाती है तो इसे **वाहित मिट्टी (Transported soil)** कहते हैं। यदि यह जल द्वारा बहायी गई है तो इसे **जलोद् मृदा (alluvial soil)** तथा यदि वायु द्वारा है तो **वातोढ़ मृदा (eolian soil)** तथा गुरुत्वाकर्षण के कारण है तो इसे **शैल-मलवा मृदा (Colluvial soil)** कहते हैं।

(b) **मृदा उत्पत्ति (Pedogenesis)**—अपक्षय (Weathering) में भौतिक व रासायनिक क्रियाओं के द्वारा बड़ी चट्टानें छोटे-छोटे टुकड़ों में बदलते हैं। कवक, जीवाणु,लाइकेन जैसे—सूक्ष्म जीवों के द्वारा विभिन्न कार्बनिक अम्लों, जायमों आदि का स्रवण होता है। इन जीवों के मरने के बाद ये विभिन्न पदार्थ मिट्टी में मिल जाते हैं। जैव-भौतिकी व जैव-रासायनिक अभिक्रियाओं के कारण कार्बनिक पदार्थों की मात्रा मिट्टी में मिलती रहती है। जिसे ह्यूमस (humus) कहते हैं। इस प्रक्रिया को **पीडोजेनेसिस (Pedogenesis) कहते हैं।**

मृदा स्वरूप (Soil structure)

अपक्षय (Weathering) व पीडोजेनिसिस के द्वारा मृदा निर्माण की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। लेकिन ये परिवर्तन पृथ्वी की ऊपरी सतह पर ही परिलक्षित होते हैं। पृथ्वी की एक खड़ी काट का अध्ययन किसी स्थान पर किया जाय तो इसमें प्रमुख तीन सस्तर (horizones) स्पष्ट होते हैं जो **मृदा परिच्छेदिका** (Soil profile) बनाते हैं। ये

स्तर मृदा निर्माण की विभिन्न स्थितियों को भी प्रकट करते हैं—

1. संस्तर ओ (Horizon 'O')—यह पृथ्वी की सतह पर का भाग है जिसमें आ था अपघटित होता हुआ कार्बनिक पदार्थ होता है। यह संस्तर वनों में बहुत स्पष्ट ता है इसके दो भाग होते हैं—

(अ) O_1 (A_{oo}) भाग—यह सबसे ऊपर की परत होती है जिसमें ताजा गिरी ' पत्तियाँ, शाखायें, पुष्प, फल तथा मरे हुए जन्तु के भाग होते हैं।

(ब) O_2 (A_o) भाग—यह O_1 के नीचे की परत होती है जिसमें अपघटन की क्रया प्रारम्भ हो जाती है। अतः विभिन्न अवस्थाओं का अपघटित (decomposing) र्बनिक पदार्थ (organic matter) तथा सूक्ष्म जीव इस भाग में मिलते हैं।

2. शीर्ष-मृदा या संस्तर अ (*Top soil or Horizon A*)—इस भाग में बालू (Sand) एवं ह्यूमस (Humus) विभिन्न अवस्थाओं में मिला हुआ रहता है। इसमें अन-अपघटित (undecomposed), अर्ध-अपघटित (partially decomposed) तथा पूर्ण-अपघटित (decomposed) ह्यूमस ऊपर से नीचे की ओर मिलता है। इस भाग में घुलनशील लवण,क्ले, लोहा, एल्यूमिनियम आदि ऊपर से नीचे की ओर रिसते (downward loss or leaching-eluviation) रहते हैं। अतः इस संस्तर को एल्यूवियेशन संस्तर (**eluviatioin or podsolic zone**) भी कहते हैं। पौधे की जड़ें भी इसी स्तर में होती हैं। इस संस्तर के ऊपरी गहरे रंग के भाग में अधिक कार्बनिक
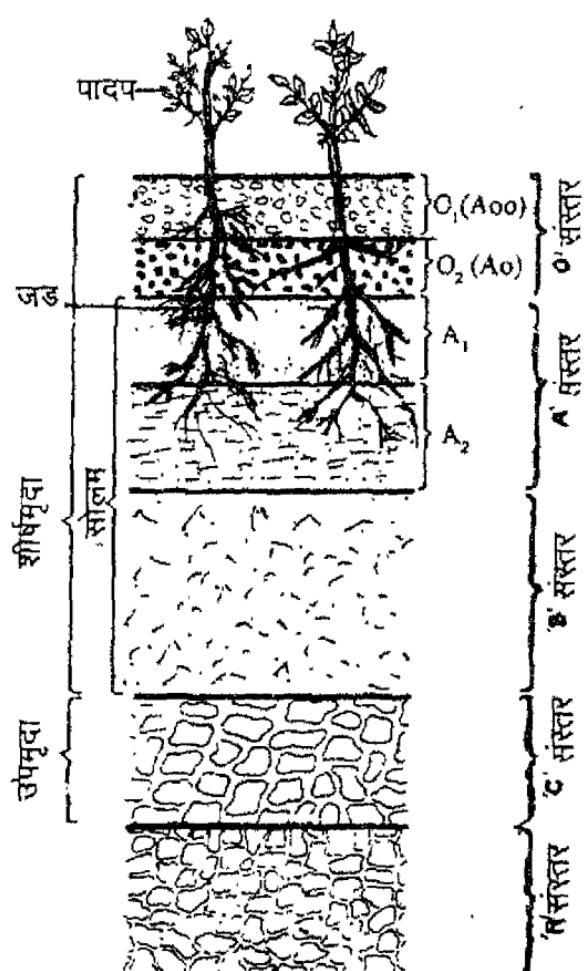
चित्र 1 .8 मृदा की काट मे देखे गये विभिन्न स्तर

पदार्थ होते हैं इसे 'A_1', भाग कहते हैं। नीचे के हल्के रंग के भाग में कम कार्बनिक पदार्थ होते हैं इसे "A_2" भाग कहते हैं।

3. अपमृदा या संस्तर ब (Subsoil or Horizon B) – शीर्ष मृदा एवं चट्टानी पर्त के बीच का भाग होता है। यहाँ वायु का अभाव होता है। यह चिकनी मिट्टी (clayey soil) का बना होता है। इसमें ह्यूमस की मात्रा कम होती है। कुछ खनिज लवण पानी के साथ घुलकर यहाँ तक पहुँचते हैं। इसमें पौधे की जड़ें व जीव नहीं पनप पाते। चूँकि A_2 भाग से रिसकर आने वाले पदार्थ तथा पानी इसी भाग में रहते हैं अतः इसे इल्यूवियेशन या इल्यूवियेशन संस्तर (illuviatioin or illuvial zone) भी कहते हैं।

A_1, A_2 व B संस्तरों को मिलाकर **खनिज मृदा (Mineral soil or solum) भी कहते हैं।**

4. संस्तर स (horizons C) – संस्तर ब के नीचे का भाग जिसमे अपक्षीण चट्टान (wehered rock) के बड़े-बड़े टुकड़े मिलते हैं।

5. संस्तर 'र' (horizone R) – यह सख्त अन-अपक्षीय (Unweathered) चट्टान का भाग है। इसके ऊपर जल एकत्रित रहता है।

मृदा सगठन (Soil compositoin)

मृदा में निम्न महत्त्वपूर्ण भाग होते हैं—

(I) खनिज पदार्थ (Mineral matter)

(II) मृदा कार्बनिक पदार्थ या ह्यूमस (Soil Organic matter or Humus)

(III) मृदा जल (Soil Water)

(IV) मृदा वायु (Soil Air)

(V) मृदा विलयन (Soil Solution)

(VI) मृदा जीव (Soil Organisms)

I. खनिज पदार्थ (Mineral matter)

मिट्टी में कण चट्टानों के अपक्षरण के फलस्वरूप बनते हैं तथा सभी बराबर नही होते। इनके व्यास के आधार पर मिट्टी निम्न प्रकार की होती है—

मृदा प्रकार (Soil type)	कण का व्यास (मि. मी. में) (Diameter of particles in mm
1 पत्थर व बजरी (Stones and Gravel)	5.000 से अधिक
2 बारीक बजरी (Fine Gravel)	2.000 से 5.000 तक
3 मोटी बालू (Coarse sand)	0.200 से 2.000 तक
4 बारीक बालू (Fine sand)	0.020 से 0.200 तक
5 गाद (Silt)	0.002 से 0.020 तक
6 चिकनी मृदा (Clay)	0.002 से कम

पौधों की वृद्धि के लिए सबसे अच्छी मिट्टी लोम या दोमट मृदा (loam) होती है। यह रेत व चिकनी मिट्टी के कणों का मिश्रण है। इसकी पानी को अपने अन्दर रखने की क्षमता (water-holding capacity) अधिक होती है तथा वायु का आवागमन भी पर्याप्त होता है।

चिकनी मिट्टी के कण पास-पास होने के कारण इसमें जड़ें आसानी से प्रवेश नही कर पातीं। इसमें पानी सोखने की क्षमता कम होती है पर अपने अन्दर जल रखने की क्षमता (water-holding capacity) अधिक होती है। लेकिन वायु कम होती है। इस मृदा में जल-क्रान्ति (water logging) अधिक होती है।

बालूई मिट्टी में जल क्रान्ति (water logging) कम होती है। इसके कण एक दूसरे से दूर-दूर होने के कारण इसमें पानी को अपने अन्दर रखने की क्षमता कम होती है। पौधों की जड़ें आसानी से फैल सकती हैं परन्त ह्यूमस की कमि के कारण जीवन सम्भव नहीं होता।

मिट्टी के छोटे कण मख्य रूप से सिलकन (Silcon) तथा एल्यूमीनियम (Aluminium) के ऑक्साइड (Oxides) तथा अन्य खनिजों से मिलकर बनते हैं। इनमें एल्यूमीनियम तथा आयरन सेसक्यूअटॉक्साइड (Aluminium and iron sesquioxides) मुख्य होते हैं। मृदा के छोटे कण ऋणात्मक रूप से आवेशित होते हैं। मिट्टी में बने खनिजों के घोल में धनात्मक आयन बनते हैं जैसे कैल्सियम, पोटेशियम, सोडियम, हाइड्रोजन आयन आदि। इनके अलावा फॉस्फेट्स, नाइट्रेट्स, नाइट्राइट्स आदि अकार्बनिक पदार्थ भी मिट्टी में होते हैं। मिट्टी के ऋणात्मक कणों के साथ धनात्मक आयन सख्ती से बंधे रहते हैं। अम्लीय मिट्टी में ह्यूमस की मात्रा अधिक होती है अतः अधिकांशः पौधे तनिक अम्लीय (6.0 से 7.5 pH) मृदा या उदासीन मृदा में उगते हैं।

कुछ पौधें अधिक अम्लता को सहन कर सकते हैं (acid tolerant) जैसे टमाटर, मक्का, चावल आदि। मृदा का अम्लीय (Acidic) या क्षारीय (alkaline) गुण H^+ आयन्स व OH^- आयन्स पर निर्भर करता है। H^+ आयन्स की संख्या के आधार पर pH बतायी जाती है। 7.0 pH उदासीन व इससे कम अम्लीय तथा अधिक क्षारीय होती है।

सामान्यतः मिट्टी के छोटे कण समूहों के रूप में रहते हैं। छोटे समूहों से बड़े समूह बनते हैं। ये समूह विशेष आकृति धारण कर लेते हैं। इन समूहों के आकार **प्रिज्म जैसे (prism-like), प्लेट जैसे (Platy or laminar), ब्लॉक जैसे** (Block-like) **या स्फीरोयडल (Spheroidol)** हो सकते हैं।

II मृदा कार्बनिक पदार्थ (Soil organic matter)

पौधों के मृत भागों (तना, पत्ती, पुष्प, जल आदि) तथा मृत जन्तुओं के शरीर आदि को सूक्ष्म जीव (Micro-Organisms) गला-सड़ा (decay) देते हैं। इससे कार्बनिक पदार्थ मिट्टी में मिल जाते हैं। इसे ह्यूमस कहते हैं। जिस मिट्टी में ह्यूमस की मात्रा अधिक होती है उसे अधिक उपजाऊ माना जाता है। ह्यूमस के कारण मिट्टी में पानी को बांधने

भी बढ़ती है। सामान्यत: बालू वाली मिट्टी में ह्यूमस का सर्वथा अभाव होता
र कार्बनिक पदार्थों की प्रकृति, उनके मातृजीव की प्रकृति, जलवायु आदि के
प्रकार के ह्यूमस बनते हैं—

: ह्यमस (Mor humus) – यह कम pH (below 3.8–4.0) पर बनता है।
र्म (Earthworms) अनुपस्थित रहते हैं। इसे raw humus भी कहते हैं।
या भूरा, खुरदरा व कठोर पीट जैसा होता है। यह अम्लीय होता है।

ा ह्यमस (Mull humus) – इसमें मोर की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म जीव होते
pH 5.0 से ऊपर होती है। इसमें अर्थवॉर्म (Earth worms) काफी होते
ाटी, भूरा या कालापन लिए होता है। यह पीला व कॉलोइडी होता है।

III मृदा जल (Soil Water)

ि के द्वारा मिट्टी में जल आता है। इसका कुछ भाग वापस मुख्य स्रोत (समुद्र,
आदि) को नदी आदि रूप में बहकर (run off) चला जाता है। कुछ भाग
(evaporation) बन जाता है। पानी के ये प्रकार पौधे के लिए उपयोगी नहीं
जल जमीन में गुरुत्वाकर्षण के कारण रिसकर मृदा की निचली सतह तक
इसे गुरुत्वाकर्षण जल (Gravitational water) कहते हैं। कुछ जल मिट्टी
: चिपका रहता है। यह आर्द्रता जल (Hygroscopic water) कहलाता है।
छ भाग मिट्टी के कणों द्वारा बनने वाले छोटे-छोटे छिद्रों (capillaries) में
से केशिका जल (capillary water) कहते हैं। जल की कुछ मात्रा विभिन्न
पदार्थों के विलायक के रूप में मिट्टी में रहता है। इसे रासायनिक जल या
जल (Chemical water, or Chemically combined water or
e water) कहते हैं। इनमें से सिर्फ केशिका जल को ही जड़ें अवशोषित कर
शेष जल पौधों के उपयोग का नहीं होता।

बार वाष्पीकरण की दर अवशोषण दर से अधिक हो जाती है। इससे पत्तियाँ
lting) जाती हैं। रात्रि में या अवशोषण की दर वाष्पीकरण के बराबर होने
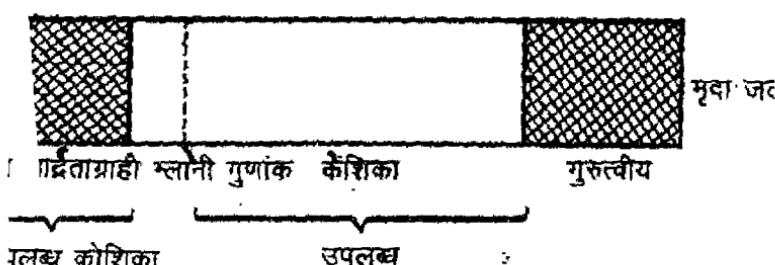
चित्र 1.9 मृदाजल का पादप के साथ सम्बन्ध

पर पत्तियाँ फिर अपनी प्राकृतिक अवस्था को प्राप्त कर लेती हैं इसे अस्थाई मुरझाना (Temporary wilting) कहते हैं। यदि मिट्टी में जल की मात्रा कम होती है तो पत्तियों रात्रि में भी अपनी प्राकृतिक अवस्था में नहीं आती हैं। इसे स्थायी मुरझाना (Permanent wilting) कहते हैं। यदि मिट्टी में जल की मात्रा इतनी अधिक हो जाये कि जड़ों को वायु प्राप्त ना हो सके तथा ये लगातार पानी में डूबी रहें तो इसे जलाक्रान्ति (water logging) कहते हैं। यदि मिट्टी में उतना जल उपस्थित हैं जितना यह अपने अन्दर रख सकती है तो यह उसकी **फील्ड कैपसिटी** (Field capacity) कहलाती है।

मिट्टी में जल की मात्रा के आधार पर पौधे जलोद्‌भिद मरुद्‌भिद्, लवणमृदोद्‌भिद् तथा समोद्‌भिद् प्रकार के होते हैं।

VI मृदा वायु (Soil Air)

मृदा कणों के बीच में मृदा वायु रहती है। यह पौधों की जड़ों के श्वसन के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है। यदि मृदा वायु की कमी होती है तो अवशोषण कम होता है। मूल रोमों की संख्या में भी कमी आ जाती है। साथ ही अन्य जीवों के श्वसन द्वारा उत्पन्न CO_2 भी एकत्रित होने लगती है और बाहर आजा नहीं सकती तो इसके सान्द्रण से मिथेन आदि गैस बनने लगती हैं जो जड़ों के लिए हानिकारक होती हैं।

V मृदा विलयन (Soil solution)

मिट्टी में विभिन्न प्रकार के लवण घोल के रूप में रहते हैं। इस घोल में करीब सभी आवश्यक खनिज होते हैं। पौधे के लिए यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण खनिज (Sulphates, Carbonates, Nitrates, Chlorides, Organic salts of Na, K. Ca, Mg आदि) मृदा विलयन से ही प्राप्त होते हैं।

VI मृदा जीव (Soil organisms)

प्रत्येक मृदा में उसका विशिष्ट फ्लोरा (Flora) व फ़ोना (Fauna) पाया जाता है (Bacteria, Fungi, Algae, Protozoans, Rotifers, Nemotodes, Worms, mollucs आदि) वह जैविक तंत्र (biological system) ह्यूमस निर्माण का महत्त्वपूर्ण कारक होता है। कुछ जीवाणु Azotobacter, Clostridium, Phizobium तथा Nostoc, Anabaena, Oscillatona आदि नील-हरित शैवाल वायुमंडल की N_2 को नाइट्रेट्स नाइट्राइट्स आदि में बदलते हैं।

जैवीय कारक-जीवों की अन्तप्रतिक्रियायें
(Biotic factors-Intractions of organisms)

पौधे अपनी जाति या अन्य जातियों के पौधों तथा जन्तुओं के साथ रहते हुए एक दूसरे के जीवन को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। एक पौधे या जन्तु के जीवन को प्रभावित करने वाले अन्य पौधों या जन्तुओं को जैविक कारक (Biotic factors) कहते हैं। जीव अपने पोषण (पशुओं का चरना), वृद्धि व प्रजनन (परागण, बीजों व फलों का प्रकीर्णन) आदि के लिए एक दूसरे के साथ **परस्पर क्रियायें (interactions)** करते हैं अतः परस्पर अंतनिर्भर रहते हैं। पौधों के अन्य जीवों के साथ तीन प्रकार से सम्बन्ध

हो सकते हैं

(1) पौधे का अन्य पौधों के साथ पारस्परिक सम्बन्ध (interrelationships with plants) में अन्तराजातीय (intraspecific) या अंतरजातीय (interspecific) प्रकार के हो सकते हैं।

(2) पौधो का मृदा में रहने वाले सूक्ष्म जीवों के साथ परस्पर सम्बन्ध (Inter-relationships with microbes of the soil)।

(3) पौधे का जन्तुओं के साथ परस्पर सम्बन्ध (Inter-relationship with animals)।

परस्पर क्रियाओं (interactions) के फलस्वरूप अन्तर्प्रतिक्रियायें (interacting) करने वाले दोनों जीवों को लाभ हो सकता है (both are benifited) । एक को हानि व दूसरे को लाभ हो सकता है (one species harms the other) या दोनों को कोई लाभ या हानि नही होती (neither population affects the other)। इन अन्तर्प्रतिक्रियाओं को विस्तार से निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

I धानात्मक अन्तर्प्रतिक्रियायें (Positive interactions)

- A. **सहोपकारिता (Mutualism)**
  1. जन्तुओं द्वारा परागण (Pollination by animals)
  2. बीजों व फलों का प्रकीर्णन (Dispessal of seeds and fruits)
  3. जूक्लोरेला एवं जूजैंथेला (Zoochlorella & Zooxanthella)
  4. लायकेन्स (Lichens)
  5. नाइट्रोजन यौगिकीकरण (Nitrogen fixation)
  6. कवक मूल (Mycorrhiza)
  7. अन्य (Others)
- B. **सहभोजिता (Commensolism)**
  1. कंठलता (Lianas)
  2. अधिपादप व अधिजन्तु (Epiphytes and epizoans)
  3. अन्य (Others)
- C. **प्राक् सहयोग (Proto-cooperation)**

II. ऋणात्मक अन्तर्प्रतिक्रियायें (Negative interactions)

- A. शोषण (Exploitation)
  1. परजीविता (Parasitism)
  2. परभक्षण (Predation)
  3. आश्रय (Shelter)
- B. प्रतिजीविता (Antibiosis)
- C. प्रतिस्पर्द्धा (Competition)
  1. अन्तराजातीय प्रतिस्पर्द्धा

2. अन्तरजातीय प्रतिस्पर्द्धा

I धनात्मक अन्तर्प्रतिक्रियायें (Positive Interactions)

परस्पर क्रियायें करने वाली जातियों में से एक या दोनों को लाभ होता है। दोनों जातियों की अपनी जिंदगी (survival) के लिए ये अन्तर्प्रतिक्रियायें आवश्यक होती हैं। ये तीन प्रकार की हो सकती हैं—

(A) सहोपकारिता (Mutualism)—

इस प्रकार के सहजीवन में सहयोग करने वाली दोनों जातियाँ लाभ उठाती है। दोनों में कुछ शरीर-क्रियात्मक विनिमय भी होता है। अतः दोनों में घनिष्ठ अनिवार्य एव अधिकतर स्थायी सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं। जैसे लायकेन। **लायकेन (Lichens)** में कवक द्वारा आधात्री (matrix) का निर्माण होता है जिसमें शैवाल धंसकर रहता है। शैवाल दोनों के लिए भोजन का निर्माण करता है तथा इस हेतु कवक खनिज पदार्थ व जल उपलब्ध कराता है। अतः दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध होते हैं तथा दोनों में से कोई भी स्वतंत्र रूप से जीवन-यापन नहीं कर सकता।

सहोपकारिता का दूसरा अच्छा उदाहरण **कवक मूलीय** (Mycorrhiza) संरचनाएँ होती हैं। कुछ पौधों की जड़ों के अन्दर या बाहरी सतह पर कवक उगती हैं। जिन्हें क्रमशः एन्डोट्रोफिक कवकमूल (endotrophic mycorrhiza) तथा एक्टोट्रोफिक कवकमूल (ectotrophic mycorrhiza) कहते हैं। कवकमूल भूमि से जल व खनिज आदि पोषक तत्त्वों का अवशोषण करती है। जड़ें इन्हें आश्रय प्रदान करती हैं तथा संश्लेषित खाद्य
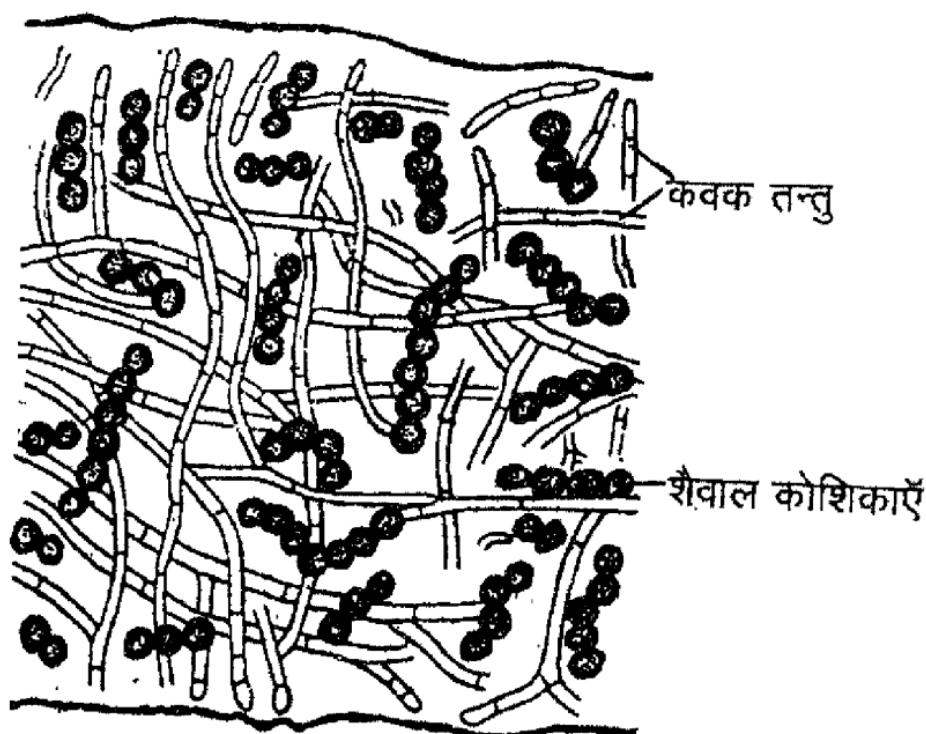
चित्र 1 .10 लाइकेन की उदग्र काट

एक्टोट्रोफिस
।—पाइनस मूल

उपलब्ध कराती है। ऑर्किड जड़ों (orchid roots में अण्डोट्रोफिक endotrophic) तथा पाइन, ओक वृक्षों की जड़ों में (ectotrophic) कवक मूल मिलती हैं।

करीब सभी लेग्यूम पौधों की जड़ों मे गाँठें पायी जाती हैं जिनमें रायजोबियम (**Rhizobium**) जीवाणु रहते हैं। ये जीवाणु परपोषी पौधे के लिए वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को नाइट्राइट्स व नाईट्रेट्स में बदलते हैं तथा स्वयं परपोषी पौधे से अपना पोषण प्रापत करते हैं। इस प्रकार सहजीवन साइकस (Cycas), पोडोकार्पस (podocaspus), केजुरायना (Casuarina) आदि में भी मिलते हैं।

बहुत से पौधों के **फल व बीजों** का **प्रकीर्णन (dispersal of fruits and seeds)** पक्षियों व जन्तुओं द्वारा होता है। पौधों के फलों को पक्षी व जन्तु खाते हैं। तथा विष्ठा के माध्यम से बीजों को अन्य स्थानों पर डाल देते हैं। इसी प्रकार मुधमक्खियाँ, तितलियाँ आदि अपने पोषण के लिए फूलों से मकरंद प्राप्त करते हैं तथा पौधों के परपरागण में सहायक होते हैं।

2 लेग्यूम जड़ों में गाँठे

जूक्लोरोली व जूजेन्थीली (Zooochlorellae and *Zooxanthallae*) जैसी एक कोशिय शैवाल स्पंज, सीलेण्टरेट, कृमि, मोलस्क आदि समुद्री-जन्तुओं के शरीर के बाहरी सतह पर रहते हैं। क्लोरेला (Chlorella) हाइड्रा (Hydra) के कोशाओं के अन्दर रहते हैं। ये शैवाल इन जन्तुओं को संश्लेषण द्वारा नाइट्रोजन युक्त व अन्य यौगिक उपलब्ध कराते हैं तथा विनिमय के रूप में CO_2 व अन्य

र्य जन्तु से प्राप्त करते हैं।

ा (Commensalism)

ा जातियों का ऐसा सह जीवन जिसमें सिर्फ एक को लाभ होता है लेकिन को नहीं होता। परस्पर प्रक्रिया करने वाले जीवों में किसी प्रकार का शरीर

क्रियात्मक सम्बन्ध नहीं होता। बॉहिनिया (Bauhinia), टिनोस्पोरा (Tinospora) जैसे पौधे किसी अन्य पौधे, दीवार आदि के सहारे से ऊपर की ओर सीधे बढ़ते हैं। इन्हें कठलता (Lianas) कहते हैं। ये पौधे घने उष्ण कटिबंधीयें जंगलों में पाये जाते हैं तथा इस प्रक्रिया से आसानी से सूर्य का प्रकाश प्राप्त कर लेते हैं। इसी प्रकार **अधिपादप (Epiphytes)** [उदाहरण—ऑर्किड, (Orchid) असनिया (Usnea), लटकने वाली मॉस (hanging moss) आदि किसी अन्य पौधे (समान्यतः बड़े वृक्ष) को अपना आश्रम बनाते हैं। लेकिन आधारीय वृक्ष से कोई पोषण आदि प्राप्त नहीं करते। अधिपादपों मे जड़ों की सतह पर एक विशेष ऊतक परत **विलामेन (Velamen)** पाया जाता है। यह ऊतक वायुमंडलीय नमी से काफी मात्रा में जल अवशोषित कर लेता है। कुछ शेवाल जन्तुओं की त्वचा की बाह्य सतह पर उगते हैं। [कछुए के कवच पर बेसिक्लेडिया (Basicladia)] इन्हें अधि जन्तु (Epizoans) कहते हैं।

चित्र.1 •13
अधिपादप ऑरकिड़

कुछ सूक्ष्म जीव (जैसे मृतोपजीवी जीवाणु, कवक, प्रोटोजुआ आदि) पौधों ओर जन्तुओं के शरीर के अन्दर रहते हैं। (मनुष्य की बड़ी आँत में इशीरिसिया कॉलाई (Escherichia coli)) वृक्षों की जड़ों और पत्तियों द्वारा निरंतर कुछ उपापचयी पदार्थ शर्करा, अमीनों अम्ल आदि बाहर की ओर विसरित होते रहते हैं। जड़ों और पत्तियों की सतह के आस-पास कुछ कवक जीवाणु व एक्टीनोमाइसीट्स इन पदार्थों को अपने पोषण के रूप में प्राप्त करते हुए रहते हैं। जड़ों तथा पत्तियों की सतह को क्रमशः **रायजोप्लेन** (Rhizoplane) व **फिलोप्लेन** (Phylloplane) तथा सूक्ष्मजीवी वातावरण को **रायजोस्फीयर** (Rhizosphere) तथा **फिलोस्फीयर** (Phillosphere) कहते हैं।

कई सहयोगी सिर्फ अन्य जीवों से अस्थायी सम्पर्क बनाते हैं। पक्षी, कीट, गिलहरी, बन्दर वृक्ष-मेंढक, सर्प आदि अपने प्रजजन, आश्रय आदि के लिए अस्थायी रूप से पेड़ों पर रहते हैं।

कुछ पौधों (आम, लीची आदि) के कुछ भागों में चींटियाँ रहने के लिए स्थान बनाती हैं तथा अन्य जन्तुओं से पौधों की रक्षा करती हैं। इसे रिमिकोफिली (myrmecophily) कहते हैं।

(C) प्राक् सहयोग (Proto-cooperation or Nonobligatory Mutualism)–

एक प्रकार का सहोपकारिता का सहजीवन होता है इसमें परस्पर प्रक्रिया
दोनों जातियाँ एक दूसरे मे लाभान्वित होती हैं परन्त एक दूसरे जीवन के
योग अनवाय नही होता। सी एनामोन (Sea anemone) क्रेब (Crab) के
पक कर भोजन हेतु इधर-उधर जाते हैं बदले में क्रेब (Crab) . को उसके
जाते हैं।

II. ऋणात्मक अर्न्तप्रतिक्रियायें (Negative Interactions)

र प्रक्रियायें करने वाली जातियों में से एक या दोनों को हानि होती है। इस
तर्प्रतिक्रियाओं को एन्टागोनिज्म (antagonism) भी कहा जाता है। ये निम्न
ती हैं—

शोषण (Exploitation)—इस प्रकार की परस्पर प्रक्रिया में एक जाति हमेशा
आश्रय आदि के लिए दूसरी जाति का उपयोग करती है तथा उसे हानि

यों को अपने प्रजनन आदि के लिए आश्रय (shelter) के रूप में घोंसले
ता होती है। कूकू (Cuckoo) जैसी चिड़िया अपना घोसला स्वयं नहीं
अपने अंडे किसी अन्य चिड़िया द्वारा बनाये गये घोंसले में रखती हैं।
कोई जीव किसी अन्य जीव के शरीर के ऊपर या अन्दर रहता है तथा
से उससे पोषण प्राप्त करता है तो उसे **परजीवी (parasite)** तथा पोषण
परपोषी (host) कहते हैं। परपोषी—परजीवी का सम्बन्ध अनेको पौधों और
जातियों में मिलता है। निम्न प्रकार के परजीवी मिलते हैं—

स्तम्भ परजीवी

(a) **स्तम्भ-परजीवी** (Stem-parasite)—अमरं बेल (cuscuta) परपोषी पौधे के तने (Stem) के चारों और लिपट कर उगती है। ये परजीवी पौधे अपनी विशेष जड़ों चूषकांग (haustoria) को परपोषी पौधे के तने के अन्दर भेजकर संवहन ऊतकों के साथ सम्बन्ध स्थापित करते हैं तथा पोषण प्राप्त करते हैं। लोरेन्थेसी (Loranthaceae) परिवार के पौधे आंशकि तना-परजीवी होते हैं।

(b) **मूल परजीवी** (Root-parasites)—ओरोबैंकी (Orobanche) **कोनोफोलिस** (Conopholis) **सिस्टैंकी** (Cistanche) **एपीफेगस** (Epifagus)

चित्र 1 .15 मूल परजवी—रैफ्लेसीया

आदि परजीवी पौधे परपोषी पौधे की मूल पर उगते हैं। **रैफलीसिया** (Rafflesia) **पौधा वाइटिस** (Vitis) की जड़ों पर उगता है। **सेन्टेलम** (Santalum) थैसियम (thesium) के पौधे आंशिक मूल-परजीवी होते हैं।.

(c) **सूक्ष्मजीवी**—कवक (Fungi), जीवाणु (Bacteria) वायरस (Virus) मायकोप्लाजम, (Mycoplasms) रिकेटिसया (Rickettsia) परपोषी पौधों व जन्तुओं पर परजीवी होते हैं। कुछ परजीवी किसी अन्य परजीवी पर परजीवीयों के रूप में उगते हैं। इन्हें हाइपर परजीवी (Hyperpararasites) कहते हैं। उदहारण–कवक।

सामान्यतः परजीवी अपना पोषण प्राप्त करते हुए परपोषी पौधे को मारते नहीं है। पर कभी-कभी कछ परजीवी अपने परपोषी को मार देते हैं तथा परभक्षी की तरह व्यवहार करते हैं।

परभक्षी (Predators)–जीव स्वतंत्र रहते हुए अपने पोषण के लिए अन्य जीव को पकड़कर मार देते हैं। यह प्रक्रिया जन्तुओं में सामान्य रूप से मिलती है। लेकिन डैक्टैलेला (Dactylella) डैक्टैलेरिया (Dactylaria), जूफैगस (Zoophagus), जैसी कवक भी कीटों निकटोड़ों को पकड़कर अपने पोषण हेतु मार देती है। मांसाहारी पौधे (insectivorous plants), जैसे नीमेन्थीज (Nepenthes), ड्रोसेरा (Drosera),

चित्र.1 .16 परभक्षी कवक (अ) अवरोध क्षेत्र (ब) प्रतिजीविता
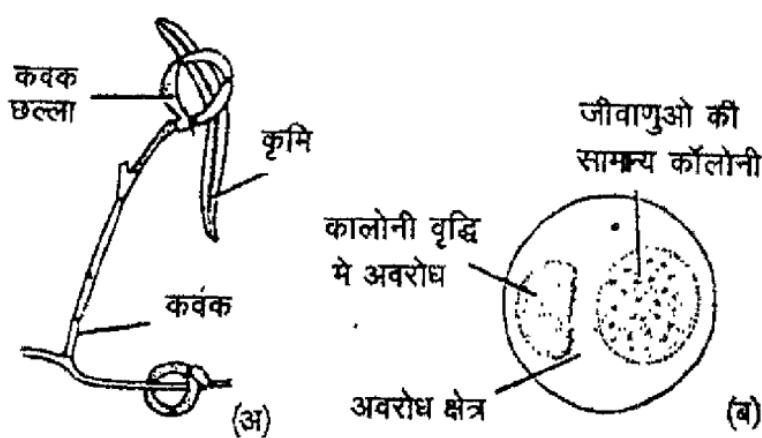
यूटकुलिरया (Utricularia), डार्लिंगटोनिया (Darlingtonia), डायोनिया (Dionaea), पौधे कीटों व छोटे-छोटे जन्तुओं को पकड़कर भोजन के रूप में उपयोग में लेते हैं। शाकाहारी जन्तु (herbivores) पौधों को अपने भोजन के रूप में खाते हैं।

(B) **प्रतिजीविता** (Antibiosis) -- यह प्रक्रिया सूक्ष्म जीवों में अधिकता से मिलती है। इसमें परस्पर प्रक्रिया करने वाले दोनों जीवों को लाभ नहीं होता। एक जीव द्वारा उपापचयी-क्रियाओं के माध्यम से इस प्रकार के पदार्थ या वातावरण तैयार होता है जो दूसरे जीव की गतिविधियों को आंशिक रूप से रोकता है या उस जीव को मार देता है। इस प्रक्रिया को प्रतिजीविता (antibiosis) कहते हैं। कई जीवाणुओं, कवकों तथा एक्टिनामाइसीट्ज (Actinomycetes) द्वारा ऐसे रसायनों का उत्पादन होता है जो अन्य सूक्ष्म जीवों के प्रति विरोधी होते हैं इन रसायनों को एन्टीबायोटिक्स (antibiotics) कहते हैं। माइक्रोसिस्टिस (microcystis) जैसी नील-हरित शैवाल के ब्लूम (bloom) तालाबों में हाइड्रोक्सीलेमाइन (hydroxylamine) जैसे रसायन बनाते हैं। रसायन मछलियों व मवेशियों के लिए विष का कार्य करता है।

(c) **प्रतिस्पर्धा** (Competition) -- जिस स्थान पर कोई पौधा या जीव रहता है वहाँ के पोषक स्रोतों के लिए अन्य जीवों से स्पर्धा करता है। इस प्रकार परस्पर स्पर्धा करने वाले जीव एक-दूसरे को हानि पहुँचाते हैं। प्रतिस्पर्धा दो प्रकार की हो सकती है—

(i) अन्तराजातीय प्रतिस्पर्धा (Intraspecific Competitions or scramble) व

(ii) अन्तरजातीय प्रतिस्पर्धा (Interspecific competitions or Contest or Interference competition)

ये प्रतिस्पर्धायें प्रकृति में स्थान, जल, प्रकाश, CO_2, खनिज, पोषक आदि के लिए होती हैं। परन्तु इस प्रकार की अन्तर्प्रक्रियायें मुख्यतः भोजन व स्थान के लिए होती हैं। हालांकि ये प्रक्रियायें निश्चेष्ट होती हैं। (जैसे श्वसन में O_2 का व प्रकाश संश्लेषण में CO_2 का उपयोग) परन्तु इन अन्तर्प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप वातावरण में अपने आपको अनुकूल नहीं बना पाती वे क्रमशः विलुप्त होती जाती हैं। पर्यावरण में विष स्रवण द्वारा सक्रिय अन्तर्प्रतिक्रिया को **एलीलोपैथी (Allelopathy)** कहते हैं। इस प्रक्रिया में एक जाति कुछ रासायसनिक पदार्थों का स्रवण करती है जो उसके साथ स्पर्धा करने वाली जाति के लिए विष के रूप में कार्य करता है। **ग्रेविलिया (Gravillea)** की जड़ें पानी में घुलनशील पदार्थ बनाती हैं जो उसकी जाति के बीजांकुर के लिए हानि कारक होता है। (यह अन्तर्जातीय प्रतिस्पर्धा Intraspecific competition है।) **पार्थिनियम (Parthenium)** की जड़ें ट्रान्ससिनेमिक अम्ल (Transcinnamic acid) स्रावित करती है जो आस-पास के अन्य जातियों के पौधों के लिए हानिकारक होता है। (यह अन्तरजातीय प्रतिस्पर्धा (Interspecific Competition है।)

वैसे तो ऐतिहासिक समय से ही मनुष्य वनस्पति को प्रभावित करता रहा है। लेकिन आधुनिक मानव तो वनस्पति को प्रभावित करने वाला एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कारक

बन गया है। निम्न प्रकार से मानव वनस्पति को प्रभावित करता है—

(1) अपने उपयोग हेतु विभिन्न प्रकार की लकड़ियों के लिए वनों की कटाई मनुष्य द्वारा होती है। इसका प्रभाव मृदा परिवर्धन पर भी पड़ता है।

(2) गाय, बकरी, भैंस, भेड़, ऊँट आदि पालतू जानवरों के लिए मनुष्य पौधे काटता है। वे जानवर चराई करते हैं तो जड़ तक पौधे को उखाड़ देते हैं। उनके पैरों से भी वनस्पति को हानि पहुँचती है।

(3) औद्योगिक या आवासीय उपयोग हेतु वनस्पति को काट या जला दिया जाता है।

(4) वैज्ञानिक, औद्योगिक कारणों से अनेक प्रकार के लाभकारी व हानिकारक प्रभाव वनस्पति पर पड़ते हैं। कारखानों से विभिन्न गैस, रसायन आदि वायु, जल आदि को प्रदूषित करते हैं।

(5) राजनैतिक कारणों से भी वनस्पति को नुकसान होता है। अपने देश पर आक्रमण करने वाले विदेशियों ने अपने रास्ते में आने वाली वनस्पति को काट या जला दिया था।

(6) सजावटी व अन्य प्रकार के पौधों को एक देश से दूसरे देश में मनुष्य अपनी आवश्यकतानुसार उगाता है। इस प्रकार अलग-अलग जलवायु के पौधों को लगाया जाता है।

पादप समुदाय (Plant community)

अनेक पादप जातियों के समूह को जो किसी क्षेत्र विशेष में परस्पर समायोजन (mutual adjustment) करते हुए तथा लाभदायक अन्तर्प्रतिक्रियायें (Beneficial interactions) करते हुए रहता है, **पादप समुदाय** (plant community) कहते हैं। समुदाय के जीव एक आवास एव एक समान वातावरण में रहते हैं। एक तालाब, एक जंगल (a forest), एक घासवन (a grassland) या एक मरुस्थल (a desert) पादप समुदाय के उदाहरण हैं। पादप समुदाय के उसके वातावरण के साथ सम्बन्ध के अध्ययन को समुदाय पारिस्थितिकी (community ecology or synecology) कहते हैं। कार्ल मोबिस ने समुदाय अध्ययन को बायोसिनोसिस (biocoenosis) भी नाम दिया
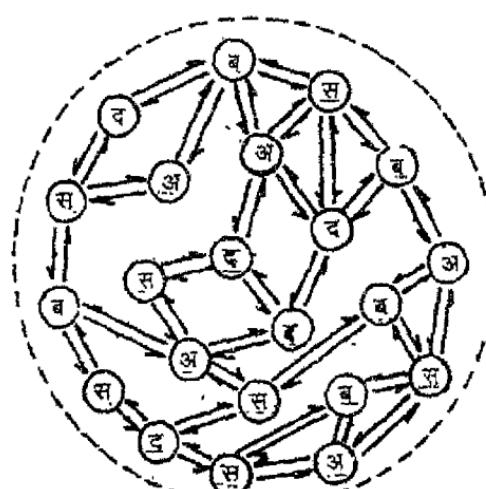
चित्र 1.17 चार जातियों वाले समुदाय का रेखा चित्र। विभिन्न जातियों में परस्पर समायोजन व अन्तरक्रियाएँ होती रहती हैं

है

समुदाय के लक्षण (Characteristics of a community) – किसी भी समुदाय के अपने स्वयं के कुछ विशेष लक्षण होते हैं। लेकिन आबादी (population) की तरह इसकी घटक जाति के सदस्यों द्वारा प्रदर्शित नहीं होते तथा समुदाय स्तर पर ही परिलक्षित होते हैं। ये निम्न प्रकार के होते हैं–

(1) **जाति विविधता** (Species diversity) – प्रत्येक समुदाय में वर्गिकीय दृष्टि से अत्यन्त भिन्न जीव (पौधे, सूक्ष्म जीव, जन्तु आदि) रहते हैं। इसी प्रकार एक समुदाय में जातियों की संख्या व आबादी घनत्व में भी भारी विभिन्नताएँ पायीं जाती हैं। जाति विविधता के दो स्तर होते हैं–

(a) **क्षेत्रीय विविधता**(Regional diversity) – एक महाद्वीप के अन्तर्गत सभी देशों में कुल मिलाकर वनस्पति में अनेकों समुदाय रहते हैं।

(b) **स्थानीय विविधता** (Local diversity) – एक ही देश की वनस्पति में अनेकों समुदाय रहते हैं।

(2) **वृद्धि प्ररूप एवं संरचना** (Growth form and structure) – किसी भी पादप समुदाय का वर्णन मुख्य वृद्धि प्ररूपों (जैसे मॉस, शाक, झाड़ी व वृक्ष) के आधार पर किया जाता है। प्रत्येक वृद्धि प्ररूप में विभिन्न प्रकार के पौधे हो सकते हैं। जैसे वृक्षों में सदाबहार वृक्ष, वृहद् पत्तियों वाले वृक्ष आदि। समुदाय की संरचना का निर्धारण इन्हीं प्ररूपों द्वारा होता है।

विभिन्न वृद्धि प्ररूपों के विन्यास प्रकार के आधार पर समुदाय में क्षैतिज स्तर अनुक्षेत्र वर्गीकरण (horizontal layering-zonation) एवं उदग्र स्तर-स्तरीकरण (Vertical layering-stratificatioin) का वर्णन किया जा सकता है।

(3) **प्रभाविता** (Dominance) - किसी भी समुदाय की सभी जातियाँ समान महत्व नहीं रखतीं कुछ जातियाँ ही समुदाय की प्रकृति का निर्धारण करती हैं। एवं उस पर (समुदाय पर) अपना नियंत्रकी प्रभाव रखती हैं। इन जातियों को प्रभावी जातियाँ (dominants) कहते हैं।

(4) **अनुक्रमण** (Succession) – किसी स्थान पर कोई समुदाय स्थायी नहीं होता एवं प्रत्येक समुदाय के परिवर्धन का अपना इतिहास होता है। विभिन्न दशात्मक परिवर्तनों के फलस्वरूप समुदाय का परिवर्धन होता रहता है। समुदाय में होने वाले दिशात्मक परिवर्तन जो कालान्तर में होते हैं को अनुक्रमण (Succession) कहते हैं।

(5) **पोषण संरचना** (Trophic structure-self sufficiency) – पोषण की दृष्टि से समुदाय एक आत्म निर्भर पूर्ण सन्तुलित जीव समुच्चय होता है जिसमें प्रकाश संश्लेषी पौधे व परपोषी जन्तु दोनों होते हैं।

समुदाय का संगठन, संरचना, उत्पत्ति एवं परिवर्धन
(Composition, structure, origion and development of community)

प्रत्येक समुदाय का अपना संगठन, संरचना व परिवर्धन इतिहास होता है।
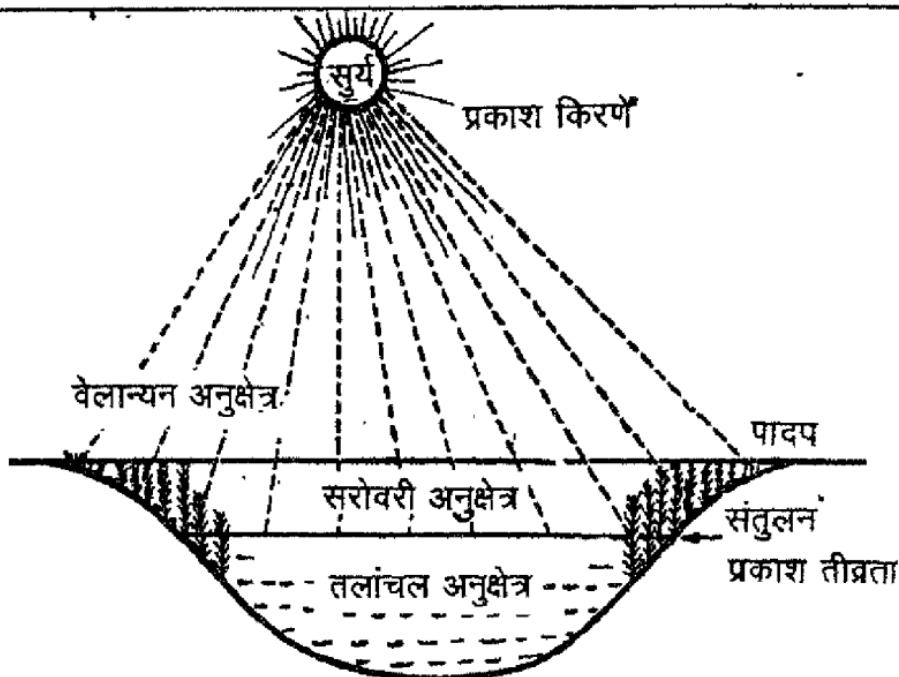
चित्र 1 .18 अलवणीय जल के जलाशय के प्रमुख क्षैतिज अनुक्षेत्र

(1) संगठन (Composition) – एक समुदाय में विविध प्रकार की जातियाँ मिलती है। उनमें से कुछ जातियाँ तुलनात्मक रूप से संख्या में अधिक, क्षेत्र के अधिक भाग में फैली हुई तथा तेजी से वृद्धि करती हैं। इस प्रकार ये अन्य जातियों के फैलाव को नियंत्रित करती है। इनके कारण से आवास में भी रूपान्तरण होता है अतः ये समुदाय का केन्द्र बिन्दु बनती हैं। समुदाय का नाम ऐसी जाति के नाम से जाना जाता है। इस प्रकार की जाति को ही प्रभावी जाति (dominant) कहते हैं।

.समुदाय के आकार की दृष्टि से समुदाय बहुत बड़े, कई-हजार कि. मी. के क्षेत्र का विस्तार कुछ सौ कि. मी. तक होता है। में फैलाव वाले हो सकते हैं उदाहरण—विस्तारित वन। मरुस्थल जैसे क्षेत्र नदी, तालाब, शाद्वल, पठार आदि केवल कुछ सीमित क्षेत्र मे ही होते हैं। पत्ती की सतह, करकट (litter) एवं मिट्टी में मिलने वाले अत्यन्त छोटे परिमाप के जीव-आवास भी होते हैं।

समुदाय संरचना (Community structure)

समुदाय संरचना में दो प्रमुख गुण प्रदर्शित होते हैं—क्षैतिज स्तर अनुक्षेत्र वर्गीकरण (Zonation) एवं उदग्र स्तर—स्तरीकरण (Stratification)। अनुक्षेत्र वर्गीकरण में समुदाय को क्षैतिज-उपसमुदायों (Subcommunities) में विभक्त किया जाता है जैसे गहरे अलवणीय जल के जलाशय (तालाब, झील आदि) में वेलांचल (Littoral), सरोवरी (Limnetic) व तलांचल या प्रोफंडल (Profundal) अनुक्षेत्रों में विभक्त किया जा सकता है। प्रत्यके अनुक्षेत्र का संगठन अलग होता है। उपसमुदाय समान जीवन प्ररूप व पारिस्थितिकीय सम्बन्ध वाली एक इकाई होता है।

[illegible]) अलवणीय जल के जलाशय में अनुक्षेत्र वर्गीकरण

[illegible] (Stratification) में समुदाय को उदग्र स्तरों में विभक्त किया जाता है। प्रत्येक [illegible] अनुक्षेत्र को एक के बाद एक क्रम में उदग्र स्तरों या मंजिलों (Stories) [illegible] किया जाता है। उदाहरण—वन समुदाय में कम से कम पाँच उदग्र स्तर पहचाने जा सकते हैं—अर्द्धभूमिगत, वन, फर्श, शाक वनस्पति, क्षुप एवं वृक्ष स्तर।

समुदाय की उत्पत्ति व परिवर्धन (Origin and developoment of Community)—किसी अनावृत बंजर क्षेत्र में पादप समुदाय का विकास निम्न अवस्थाओं के द्वारा होता है—

(a) अभिगमन (Migration)—विभिन्न जातियों के बीज (seeds), बीजाणु (spores) व प्रवर्ध्य (propagules) के बंजर अनावृत क्षेत्र में आगमन को अभिगमन कहते हैं।

(b) नवावास (Ecesis)—बीज, बीजाणु, प्रवर्ध्य आदि अंकुरित होकर नवोद्‌भिद् (seedlings) बनाते हैं। नये आवास व वातावरण के कारण इनमें से सिर्फ कुछ जीवित रहकर वयस्क बनते हैं व अपने आपको स्थापित कर सफलता पूर्वक वृद्धि करते हैं। इसे नवावास कहते हैं।

(c) अपनिवेशन (Colonisation)—स्थापित जातियों की संतति बढ़कर उपनिवेश बनाती हैं। इन प्रथम आगमन वाली जातियों के पौधों की वृद्धि व उपनिवेश के कारण नव आवास का वातावरण परिवर्तित होता है। परिवर्तित वातावरण अन्य अनेक जातियों के लिए अनुकूल होने से नयी पादप व जन्तु जातियाँ उपनिवेश में रहने को आने लगती हैं। कुछ समय यह चक्र चलता है जिसके फलस्वरूप धीरे-धीरे निश्चित लक्षणों वाला समुदाय परिवर्धित हो जाता है। यह उस क्षेत्र विशेष के वातावरण का जैविक घटक बनाता है।

(d) परस्पर अन्तर्सम्बन्ध (Inter-relationships)—अनेक जातियों के स्थापन व उनकी आबादी बढ़ने से जीवों में आपस में स्थान व भोजन से सम्बन्धित अर्न्तसम्बन्ध स्थापित होते हैं। इसी प्रकार जीवों के अपने वातावरण के साथ भी अन्तर्सम्बन्ध होते हैं। ये निम्न प्रकार के होते हैं—

(i) जीवों के आपस में अर्न्तसम्बन्ध (Inter-relationship between organisms themselves)

प्रतिस्पर्द्धा (Competition)—परस्पर एक ही जाति के सदस्यों (Intraspecific) या विभिन्न जातियों के सदस्यों (*intraspecific*) के बीच बढ़ती आबादी के कारण आवासीय प्रतिस्पर्द्धा विकसित होती है। क्रियाओं;प्रतिक्रिया के द्वारा ये जातियाँ लगातार वातावरण में परिवर्तन लाती हैं। परिवर्तित वातावरण में जो जातियाँ अनुकूलित नहीं कर पाती हैं—धीरे-धीरे विलुप्त हो जाती हैं। साथ ही परिवर्तित वातावरण में नयी जातियों का आगमन भी होता है। धीरे-धीरे पूर्व समुदाय से एकदम अलग समुदाय बन जाता है।

पाद
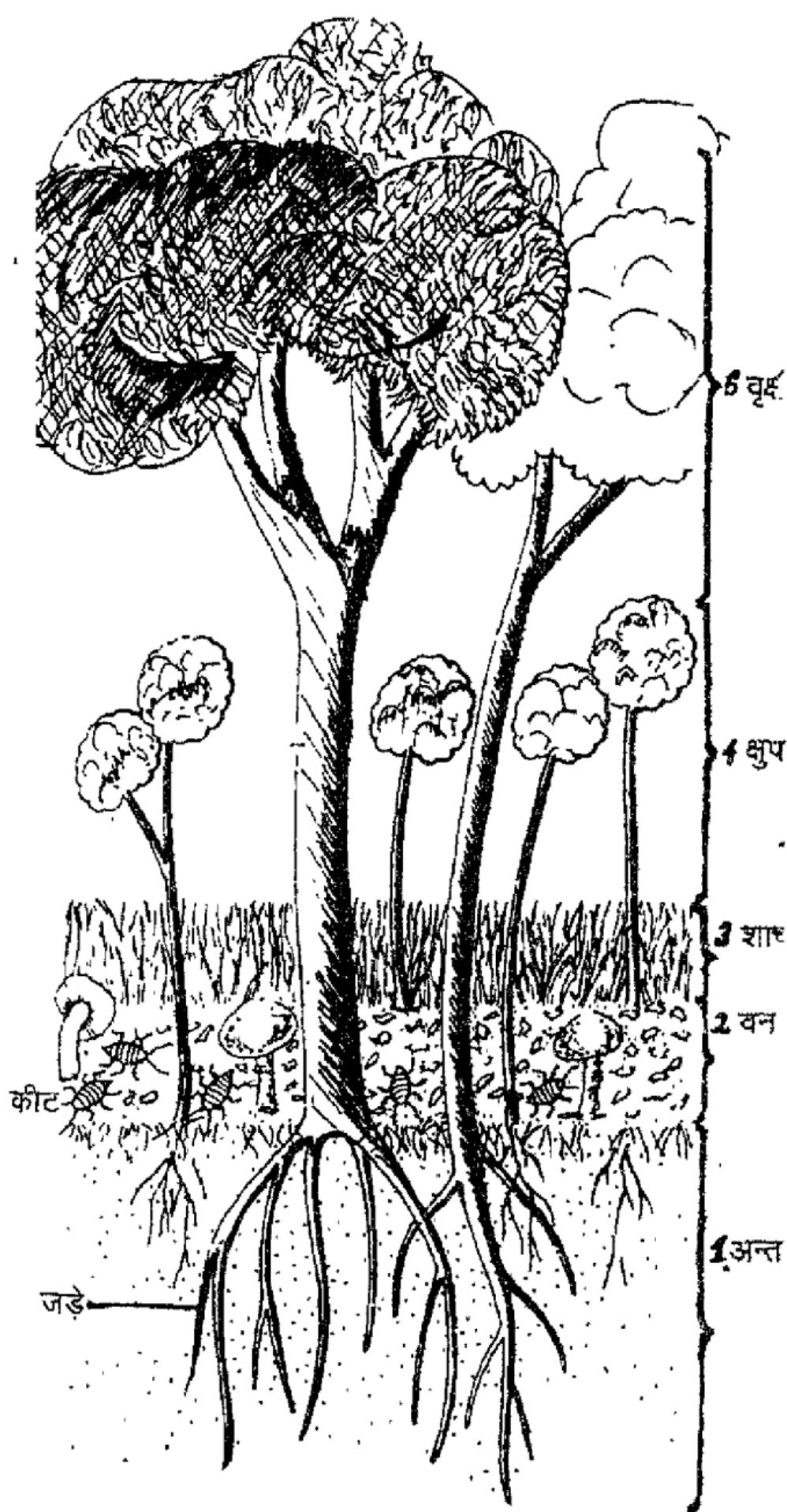
चित्र 1.19 वनसमुदाय मे उदग्र स्तरीकरण

यह प्रक्रिया लगातार चलने से एक के बाद एक नये समुदायों का विकास होता है। इस क्रमबद्ध परिवर्तन के द्वारा होने वाले वनस्पति परिवर्धन को अनुक्रमण (Succession) कहते हैं। जल्दी ही यह परिवर्तन की प्रक्रिया रुकती है तथा एक विशेष समुदाय तथा आवास स्थायित्व की दशा में आ जाते हैं। अन्तिम स्थायी समुदाय को चरम समुदाय (climax community) कहते हैं। उस क्षेत्र की वनस्पति इस चरम समुदाय के नाम से जानी जाती है।

स्तरीकरण (Stratification) – धीरे-धीरे उदग्र दिशा में पादप जातियों के स्तर बन जाते हैं। एक स्तर के पादपों से जो वातावरण में परिवर्तन होता है व दूसरे स्तर के पौधों के लिए अनुकूल होता है। इस प्रकार परस्पर अन्योन्याश्रम (Interdependence) का विकास होता है। उदाहरण—वृक्ष शाखाओं पर ऑर्किड (orchids) व तनों पर लिपटकर कंठलताओं (lianas) का उगना। स्तरीकरण इन प्रक्रियाओं का ही परिणाम होता है।

सह आवास (Cohabitation) – कई बार विभिन्न पादपों के कायिक भागों से कई रासायनिक पदार्थों का स्रवण होता है जो मृदीय वातावरण को प्रभावित करता है। साथ ही मृदी सूक्ष्म जीवी (कवक, एक्टीनोमाइसीट्स, जीवाणु आदि) भी मृदा में अनेक रासायनिक पदार्थों का स्रवण करते हैं जो उच्च श्रेणी-पादपों के मूल तंत्र को प्रभावित करते हैं।

(ii) जातियों व पर्यावरण के मध्य सम्बन्ध (Relationships between species and the environment) – वातावरण व जीवों के मध्य अन्तर्प्रतिक्रियायें निरंतर चलती रहती हैं। वातावरण में परिवर्तन इन प्रक्रियाओं का परिणाम होता है जिसके कारण ही अनुक्रमण (क्रमबद्ध वनस्पति परिवर्धन) होता है।

समुदाय संरचना को ज्ञात करने वाले गुण (Characters used in Community structure) – प्रत्येक समुदाय के जातिय विविधता, वृद्धि, प्ररुप, जाति प्रभाविता, संरचना व अनुक्रमणी प्रवृत्ति जैसे लाक्षणिक गुण भी विशेष होते हैं। समुदाय के इन अभिलक्षणों के बारे में जानकारी कुछ विशेष गुणों, लक्षणों या प्राचलों (Characters या parameters) अधार पर मिलती है। ये प्राचल दो प्रकार के होते हैं—

(1) विश्लेषी प्राचल या गुण (Analytical chracters)

(2) संश्लेषी प्राचलन या गुण (Synthetic characters)

विश्लेषी-गुण दो तरह के होते हैं—मात्रात्मक (Quantitive) एवं गुणात्मक (qualitative)। इनके अन्तर्गत आवृत्ति, घनत्व व बाहुल्यता आदि का अध्ययन किया जाता है। संश्लेषी गुण विश्लेषी गुणों के आधार पर बताये जाते हैं। जैसे—उपस्थित एवं निरंतरता, प्रभाविता आदि। समुदाय के इन सभी गुणों का वर्णन इस पुस्तक की परिधि के बाहर है परन्तु कुछ विश्लेषी गुणों का अध्ययन हम यहाँ करेंगे।

(1) **आवृत्ति** (Frequency) – परिचयन एकक (sampling unit) की वह संख्या (प्रतिशत में) जिसमें एक विशेष जाति पायी जाती है।

$$\text{आवृत्ति \%} = \frac{\text{परिचयन एककों की संख्या जिसमें जाति प्रमुख पायी गई}}{\text{कुल अध्ययन किये गये परिचयन एककों की संख्या}} \times 100$$

उपरोक्त फार्मूला के आधार पर जो आवृत्ति मान प्राप्त होते हैं उन्हें रॉन्कियर ने पॉच आवृत्ति वर्गों में विभक्त किया है—

आवृत्ति प्रतिशत	आवृत्ति वर्ग
0–20	A
21–40	B
41–60	C
61–80	D
81–100	E

(2) सघनता (Density)—किसी भी क्षेत्र में जाति के सदस्यों की संख्या उस की सघनता को दर्शाती है।

$$\text{सघनता} = \frac{\text{सभी परिचयन एककों में जाति के सदस्यों की कुल संख्या}}{\text{अध्ययन किये गये परिचयन एककों की कुल संख्या}}$$

सघनता किसी भी समुदाय में पादप जाति की संख्यात्मक ताकत को दर्शाती है। इसे सदस्य संख्या प्रति एकांक क्षेत्र (no. of individuals per unit area) के रूप में व्यक्त किया जाता है।

(3) बाहुल्यता (Abundance)—प्रति परिचयन एकक में किसी जाति विशेष के सदस्यों की संख्या उस जाति की बाहुल्यता कहलाती है।

$$\text{बाहुल्यता} = \frac{\text{अध्ययन किये गये सभी परिचयन एककों में जाति के सदस्यों की कुल संख्या}}{\text{परिचयन एककों की संख्या जिसमें वह जाति प्रमुख पायी गयी}}$$

परिचयन (Sampling)—समुदाय के लक्ष्यों की मात्रात्मक जानकारी के लिए विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता है। इनमें परिचयन (sampling) एक महत्त्वपूर्ण विधि है। सामान्यतः आवृत्ति, घनत्व व बाहुल्यता की गणना हेतु निम्नलिखित तीन परिचयन एकक (sampling units) प्रयोग में लिये जाते हैं—

(1) क्वाड्रेट विधि (Qwadrat method)—क्वाड्रेट एक निश्चित परिमाप का क्षेत्र होता है। सामान्यतः यह वर्गाकार होता है। वनस्पति के प्रकार और अध्ययन के उद्देश्य को ध्यान में लेते हुए विभिन्न प्रकार के क्वाड्रेट काम में लिए जाते हैं। क्वाड्रेट का न्यूनतम परिमाप जाति-क्षेत्र-वक्र विधि (species-area-curve method) द्वारा ज्ञात किया जाता है।

(2) ट्रान्सेक्ट विधि (Transect Method)—एक रेखा एक परिचयन एकक के रूप में कांम में ली जाती है। घासवन के लिए एक पतली रेखा एक रेखा परिचयन एकक

ransect) के रूप में काम में की जाती है , जबकि वनों के लिए आवश्यकतानुसार के फीते (belt-transect) के रूप में काम में लिया जाता है।

(3) **बिन्दु विधि (Point Method)**—करीब 50 cm लम्बी सामान्यतः 10 पिनो छड़ी के फ्रेम में लगाया जाता है। (point-frame)। पिनों को क्षेत्र में लगाया । जो पौधे इन पिनों को छूते हैं उन्हें रिकार्ड कर लिया जाता है।

समुदाय क्षेत्र में अधिकाधिक्ये प्रतिचयन (samples) लेने चाहिए। प्रत्येक प्रतिचयन । आंकड़ों का औसत मान ही सही मूल्यांकन के निकट होता है।

अध्ययन बिन्दु

पौधों और उसके बाह्य वातावरण के पारस्परिक सम्बन्धों के अध्ययन को **इकोलोजी** कहते हैं।

वातावरणी या **पारिस्थितिक कारक** पौधों की वृद्धि को **प्रत्यक्ष** अथवा **अप्रत्यक्ष** रूप से प्रभावित करते हैं।

वातावरणी कारक चार प्रकार के होते हैं—**जलवायुवीय**, **भू-आकृतिक**, **मृदीय** तथा **मानव**

प्रकाश, ताप, वर्षा, वायु, अग्नि इत्यादि जलवायुवीय कारक हैं।

प्रकाश का **गुण, मात्रा** एवं **दीप्तिकाल** पौधों को प्रभावित करता है।

पौधों की सभी जीवन क्रियाएँ 0-50° से. के मध्य सम्पन्न होती हैं। 0° से. से कम व 50° से. से ज्यादा ताप पौधों को नुकसान पहुँचाता है।

अदृश्यवाष्प के रूप में वायुमण्डल में उपस्थित नमी को **आर्द्रता** कहते हैं। वास्तविक आर्द्रता व संतृप्त स्थिति की आर्द्रता के अनुपात को **आपेक्षिक आर्द्रता** कहते हैं।

तेज गति वाली वायु से शाखायें, तने अथवा सम्पूर्ण पौधे टूट जाते हैं, इसे **विंडफाल** कहते हैं।

भूमि की **ऊँचाई, ढाल** तथा **पर्वतमालाओं की दिशा** पौधों की वृद्धि को प्रभावित करते हैं।

अपक्षय व **पीडोजेनिसिस** द्वारा मृदा निर्माण होता रहता है।

मृत पौधों व जीवों को सूक्ष्म जीव सड़ा गला देते हैं। ये अवशेष मिट्टी में मिलकर **ह्यूमस** बनाते हैं।

मृदा जल, वायु, विलयन व जीवन भी पौधों की वृद्धि को विभिन्न रूपों में प्रभावित करते हैं।

पौधे-पौधे, जन्तु-जन्तु तथा पौधे-जन्तु एक दूसरे के जीवन को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं अर्थात् इनमें परस्पर **अन्तर्प्रतिक्रियाएँ** होती रहती हैं।

ऐसी अन्तर्प्रतिक्रियाएँ जिनमें एक या दोनों जातियों को लाभ होता है, **धनात्मक** कहलाती हैं।

15. ऐसी अन्तर्प्रतिक्रियाएँ जिनमें एक या दोनों जातियों को हानि कहलाती हैं।
16. पादप जातियों के वे समूह जो किसी क्षेत्र विशेष में लाभदा करते हुए रहते हैं, **पादप समुदाय** कहलाते हैं।
17. **समुदाय संरचना** को **विश्लेषी** या **संश्लेषी** गुणों के द्वारा ज्ञात कि

अध्याय–2

पादप अनुकूलन

(Plant adaptations)

जीवधारी जिस वातावरण में रहते हैं, उसके साथ प्रतिक्रिया करते रहते हैं। इसी प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप उनकी आकारिकी (morphology), आतरिक संरचना (anatomy) व कार्यिकी (Physiology) में आवश्यकतानुसार परिवर्तन होते रहते हैं। **ऐसे परिवर्तन जिनके द्वारा पर्यावरण की विषम परिस्थितियों को सहने अथवा उनसे अधिकतम लाभ प्राप्त करने की क्षमता विकसित होती है उन्हें अनुकूलन (adaptations) कहते है।** अनुकूलन जीवों की वह परिस्थिति होती है जिसके द्वारा वे पर्यावरण के साथ समायोजित (adjusted) रहते हैं।

जीवों के जीवन पर जल का महत्त्वपूर्ण प्रभाव होता है। पादपों में जल बीजों के अंकुरण, अवशोषण, वाष्पोत्सर्जन, प्रकाश संश्लेषण, वृद्धि, श्वसन, तरल खाद्य का स्थानांतरण इत्यादि कार्यिकी प्रकार्यो (physiological functions) को प्रभावित करता है। जल की उपलब्धता के आधार पर वार्मिंग (Warming, 1895) ने पौधों को **चार पारिस्थितिकाय वर्गों** (ecological groups) में विभाजित किया है—

1. जलादभिद (Hydrophytes)
2. मरुदभिद (Xerophytes)
3. समोदभिद (Mesophytes)
4. लवणोदभिद (Halophytas)

I जलोदभिद (Hydrophytes)

ये पौधे जल या अत्यधिक जल वाली मिट्टी में उगते हैं।

जलोदभिदों के प्रकार (Types of hydrophytes)—जल की मात्रा के अनुसार पौधों के गुणों में काफी अन्तर आ जाते हैं। इन पादपों को निम्न छः संवर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(i) मुक्त प्लावी (Free floating)—ये पौधे जल की सतह पर **स्वतंत्र** रूप से तैरते रहते हैं। ये जल और वायु के सीधे सम्पर्क में रहते हैं। परन्तु मिट्टी से इनका कोई सम्पर्क नहीं होता है। उदाहरण—**आइकोर्निया** *(Eichhornia)*, **लेम्ना** *(Lemna)*, **पिस्टिया** *(Pistia)*, **साल्विनिया** *(Salvinia)*, **वॉल्फिया** *(Wolffia)* इत्यादि।

(ii) प्लवी पर्णो वाले मृदा में मूलतंत्र द्वारा स्थित पादप (Rooted plants with floating leaves)—इन पोधों का मूलतंत्र तली की **मिट्टी के सम्पर्क** में रहता है।
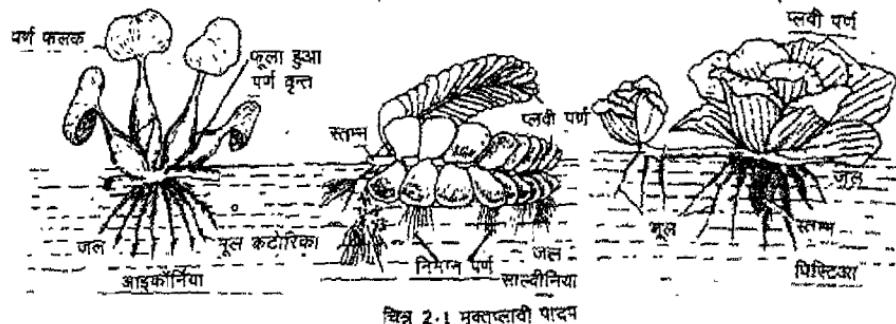
चित्र 2.1 मुक्तप्लावी पादप

लेकिन इनके लम्बे पर्णवृन्त वाले पर्ण, जल सतह पर प्लवित रहते हैं। इन पर्णों के अलावा शेष पादप शरीर जल निमग्न रहता है। उदाहरण—**ट्रापा** *(Trapa)*, **नीलम्बो** *(Nelumbo)*, **निम्फिया** *(Nymphaea)* I

चित्र 2.2 प्लवीपर्ण वाले मृदा में मूलतन्त्र द्वारा स्थित पादप

(iii) जल निमग्न प्लावी (Submerged Floating)—निमग्न प्लावी जलोद्भिद् जल के अन्दर उगते हैं। आरम्भ में इनका सम्पर्क नीचे तली से रहता है, परन्तु बाद में यह सम्बन्ध टूट जाता है और पौधे जल में **अन्दर ही अन्दर तैरते रहते** हैं। इनका वायु से कोई सम्पर्क नहीं रहता है। उदाहरण—**सिरेटोफिलम** *(Ceratophyllum)*, **नाजस** *(Najas)*, **यूट्रीकुलेरिया** *(Utricularia)*, इत्यादि।

(iv) मूलतन्त्र द्वारा स्थिर जलनिमग्न (Rooted submerged)—ये पौधे जलाशय की **तली से जड़** द्वारा लगे रहते हैं तथा शेष पादप शरीर **पूर्णतया जलनिमग्न** रहता है। उदाहरण—**हाइड्रिला** *(Hydrilla)* **पोटेमोजिटॉन** *(Potamogetioin)*, **वैलिसनेरिया** *(Vallisneria)* इत्यादि।

(v) मूलतन्त्र द्वारा स्थिर निर्गत (Rooted emergent)—ये पौधे उथले जल में उगते हैं और इनके **तने जल के बाहर** निकले हुए होते हैं उदाहरण—**साइपेरस** *(Cyperus)*, **रैननकुलस** *(Rananculus)*, **सैजिटेरिया** *(Sagittaria)*, **टाइफा** *(Typha)* इत्यादि।

(vi) जलस्थलीय जड़ित (Amphibious rooted)—इस प्रकार के पौधे जलाशय
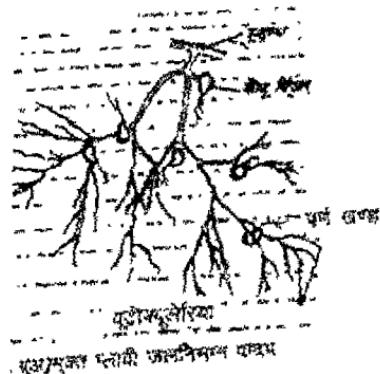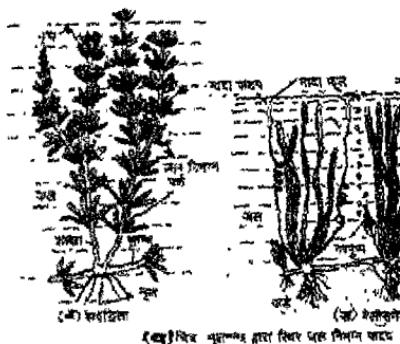
चित्र 2.4 मूलतन्त्र द्वारा स्थिर निर्गत पादप

के पास दलदली स्थानों पर पाए जाते हैं
अत्यधिक जल की आवश्यकता होती है ले
इनके प्ररोह आंशिक रूप से या सम्पूर्ण
के ऊपर रहते हैं। उदाहरण—**पॉलि**
(Polygonum), **मार्सीलिया** *(Marsi*
जस्सिया *(Jussiaea)* इत्यादि।

जलोद्भिदों में पारिस्थितिक अनुकूलन
(Ecological adaptations in hydrophytes)

बाह्य आकारिकी लक्षण (External Morphological features)

मूलतन्त्र (Root system)

1. जल प्रचुरता के कारण जड़ें
महत्त्व कम हो जाता है अतः जड़ें या तो
विकसित होती हैं **(हाइड्रिला)** अथवा
पूर्ण रूप से **अभाव** होती है। **(वॉलि**
साल्विनिया, सिरेटोफिलम)। मूल
(water emergent) पौधों में
परिवर्धित जड़ें होती हैं। **(रैननकुलस)**

2. मूलरोम या तो **अनुपस्थित या अल्प परिवर्धित** होते हैं।

3. **मूलगोप** का अभाव होता है। कुछ जलोद्भिदों जैसे—**एजोला** *(Azolla)*,
a), **पिस्टिया** *(Pistia)* इत्यादि में मूलगोप या मूलाच्छद के स्थान पर **मूल कोट**
ocket) पाई जाती है। यह पौधों को तैरने में सहायता करती है।
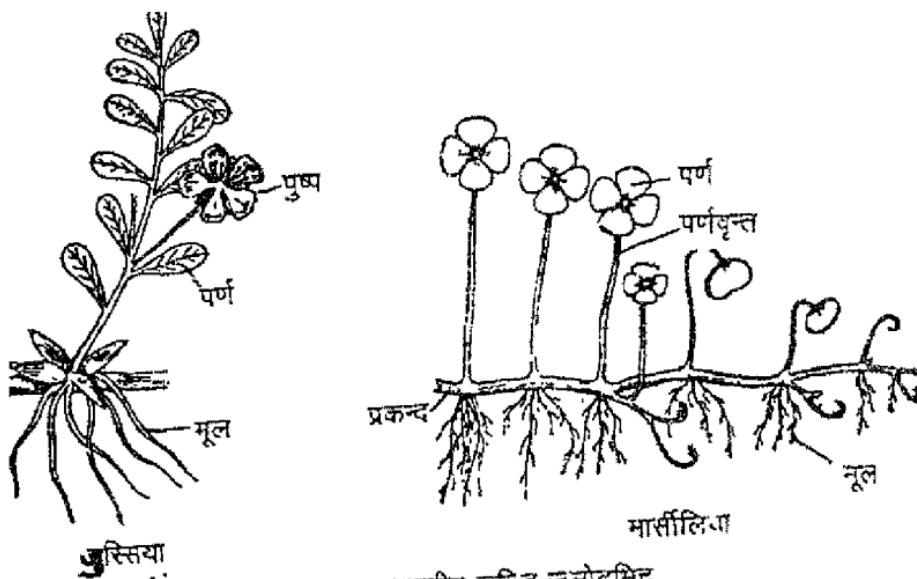
चित्र 2.4 ब जलस्थलीय जड़ित जलोद्भिद

प्ररोह (Shoot)

अधिकांश पौधों के **तने कोमल, लचीले (flexible) व स्पंजी** होते हैं। कुछ जलोद्भिदों के तने **प्रकंद** (rhizome) में रूपान्तरित हो जाते हैं। उदाहरण—**वैलीसनेरिया** (Vallisneria)।

पर्ण (Leaves)

1. इनकी पत्तियाँ या तो **छोटी** होती हैं जैसे एजोला (Azolla) में, या जल प्रवाह की सुलभता के लिए **कटी हुई** होती हैं। जल निमग्न पौधों में पर्ण पतले रिबन सदृश्य **वैलिसनेरिया** *(Vallisneria)* में तथा लम्बे रेखाकार जैसे **पोटेमाजिटोन** (Potamogeton) में होते हैं।

2. तैरने वाली पत्तियों की **बाहरी सतह पर मोमीय परत** जैसे **निम्फिया** *(Nymphaea)* में अथवा रोम जैसे **साल्विनिया** *(Salvinia)* में उपस्थित होते हैं।

3. निर्गत (emergent) और कुछ जलस्थलीय (amphibious) जलोद्भिदो में पत्तियाँ **विषमपर्णी** (heterophyllous) होती हैं। इन पौधों में जल की सतह से नीचे स्थित पत्तियाँ संकीर्ण कटी फटी तथा लम्बी होती हैं और जल के बाहर निकली हुई पत्तियाँ सम्पूर्ण तथा चौड़ी होती हैं। उदाहरण—**रैनकुलस** *(Ranunculus)* , **सैजिटेरिया** *(Sagittareia)* इत्यादि।

4. इन पौधों के पर्णवृन्त लम्बे लचकमयी और प्रायः **श्लेष्मा आवरित** होते हैं उदाहरण—**निम्फिया** (Nymphaea) । कुछ पौधों में पर्णवृन्त फूले हुए **स्पंजी होते हैं** और यह पौधों को तैरने में सहायता करते हैं। उदाहरण **ट्रापा** *(Trapa)*, **आइकोर्निया** *(Eicchornia)* इत्यादि।
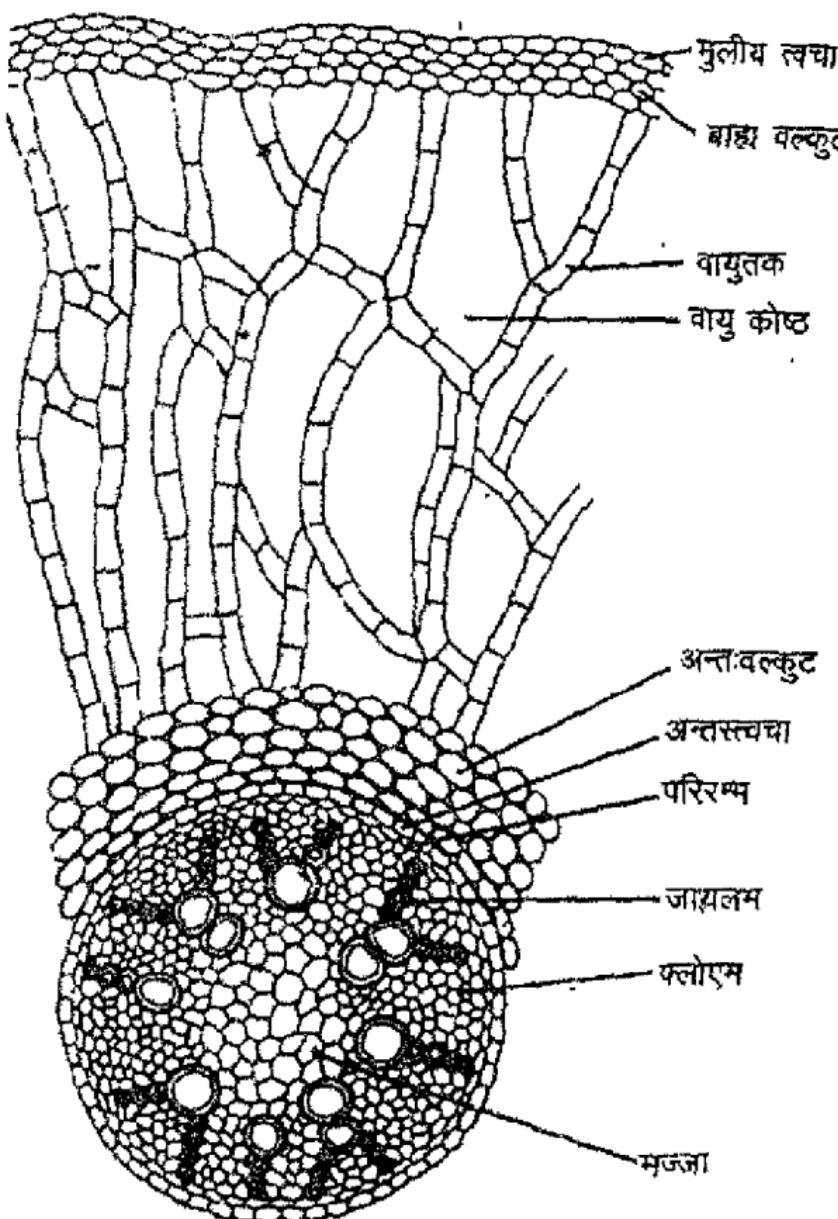
चित्र 2.5 आइकॉर्निया की मुल का अनुप्रस्थ काट

प्रजनन (Reproduction)

जलोद्भिद् अधिकतर वर्षानुवर्षी (Perennial) होते हैं और उन
का बहुत ही कम प्रभाव होता है। इनमें सामान्यत: **कायिक** (Veg
है।

कुछ जलोद्भिद् में लम्बी-लम्बी शाखाओं पर पुष्प परिवर्धित होते
परागण हेतु सतह से ऊपर रहते हैं तथा जल धाराओं द्वारा इनमें परागण
है।

इनमें कायिक (Vegetative) प्रजनन अलग-अलग प्रकार से होत
Elodea) में खंडन (Fragmentation) द्वारा, **वैलिसनेरिया** *(Vallis*
olon) द्वारा, **सैजीटेरिया** *(Sagittaria)* में टयूबर (Tuber) द्वारा और यू
na) में विशेष प्रकार की कलिकाओं (buds) द्वारा।

अधिकांश जलोद्भिदों में लैंगिक जनन (sexual reproduction)

है और जिनमें होता है उनके फलों का परिक्षेपण (dispersal) वायु और जल द्वारा होता है।

5. इन पौधों के चारों ओर जल की प्रचुरता के कारण बीजों का **अंकुरण नही** हो पाता।

शारीरिय लक्षण (Anatomical features)–

सामान्यतः जलोद्भिदों में असंख्य बड़े-बड़े **वायुकोष्ठ** (air chambers) होते हैं। **यान्त्रिक** (mechanical) ऊतक का सम्पूर्ण अभाव होता है। **संवहन ऊतक** कम विकसित होता है तथा **उपत्वचा** (cuticle) का अभाव होता है।

जड़ें (Roots)

जलोद्भिद् मूल में ऊतकों के वितरण को उसकी अनुप्रस्थ काट की सहायता से समझा जा सकता है।

1. मूलीय त्वचा (epiblima) पर **उपत्वचा** (cuticle) नहीं होती।

2. वल्कुट (cortex) मृदूतकीय होता है और सुपरिवर्धित **वायूतक** (aerenchyma) उपस्थित हो सकता है। वायु गुहाएँ मुड़ने पर टूटने से बचाती हैं, गैस विनिमय में सहायक होती हैं तथा उत्प्लावकता देती हैं।

3. संवहनी ऊतक **अल्प परिवर्धित** होते हैं। जायलम कोशिकाएँ पतली भित्ति वाली होती हैं व वाहिकाएँ प्रायः अनुपस्थित **होती हैं। जल निर्गत** पौधों में संवहनी ऊतक अपेक्षाकृत **अधिक परिवर्धित** होता है।

4. कुछ जल निर्गत जातियों के अलावा शेष सभी में **यान्त्रिक** (mechanical) **ऊतक नहीं होते हैं।**

स्तम्भ (Stem)

चित्र 2.6 हाइड्रिला के स्तम्भ का काट
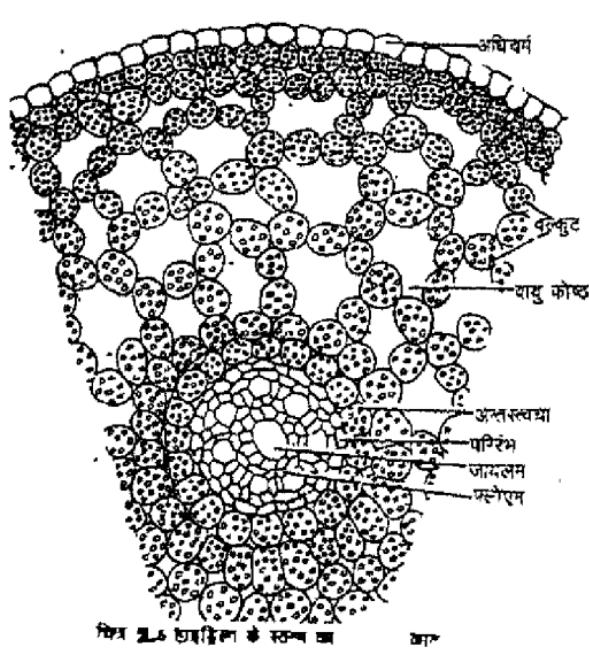
जलोद्भिद् स्तम्भ की आंतरिक संरचना को **हाइड्रिला** स्तम्भ के अनुप्रस्थ काट की सहायता से समझ सकते है।

1. **उपत्वचा** अनुपस्थित या अल्पविकसित होती है।

2. **अधिचर्म** (epidermis) एक स्तरीय व पतली भित्ति वाली कोशिकाओं का बना होता है। इन कोशिकाओं में हरित लवक भी पाए जा सकते हैं। जल निर्गत पादपों में उपत्वचा व अधिचर्म **दोनों ही अपेक्षाकृत अधिक**

चित्र 2.7 निम्फिआ की पत्ती की उदग्र काट

होते हैं।
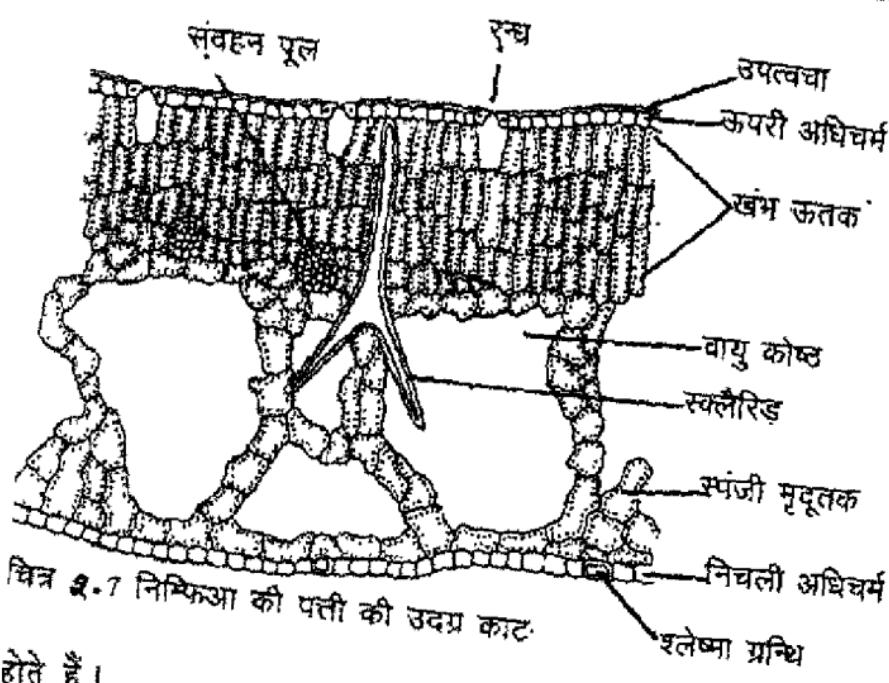
जल निमग्न पोधों में **अधः त्वचा** (hypodermis) नहीं होती है। **वल्कुट** (cortex) बड़ा व मृदूतकीय होता है। वल्कुट मुख्यतः yma) का बना होता है और इसमें अनेक **वायुकोष्ठ** (air chamber दारु की मात्रा अत्यन्त कम होती है। कभी-कभी तो दारु केवल एक

चित्र 2.8 टाइफा की पत्ती की उदग्र काट
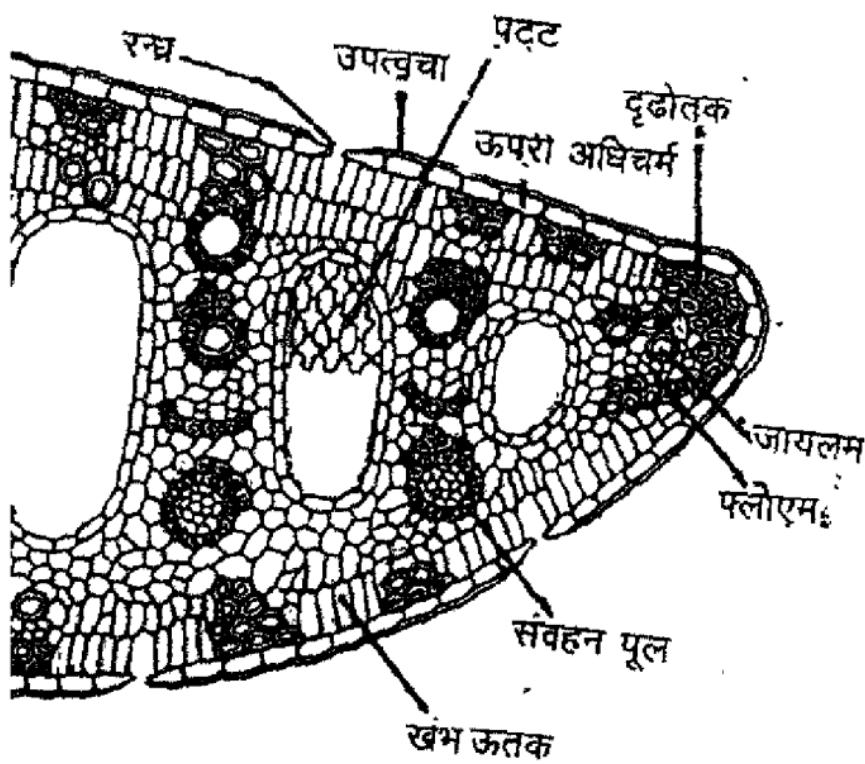
बना होता है। दारु की अपेक्षा **पोषवाह** सुविकसित होता है। संवहन ऊतक अपेक्षाकृत ली भित्ति वाले होते हैं। **लिग्नीकृत** ऊतकों का अभाव होता है। जल निर्गत भागों में **वन ऊतक** अपेक्षाकृत सुपरिवर्धित होते हैं।

ी (Leaves)

पर्ण की आंतरिक संरचना का अध्ययन की पत्री के अनुप्रस्थ काट की सहायता कर सकते है।

1. पत्तियों पर **उपत्वचा** नहीं होती, परन्तु तैरने वाली पत्तियों की ऊपरी बाह्य त्वचा **मोमीय** (waxy) अथवा **रोमिल** (hairy) परत होती है। इस प्रकार की पत्तियों की री बाह्य त्वचा में **रन्ध्र** (stomata) भी पाए जाते हैं। अन्य जलोद्भिदों में रन्ध्रों का भाव होता है।

2. पत्तियों के अधिकतर भाग में बड़े **वायु कोष्ठ** और **स्पंजी मृदूतक** फैला होता जलनिमग्न पर्ण में, **मध्योतक** में कोई विभेदन नहीं पाया जाता है। **प्लव पर्ण** में जैसे **म्फया** (Nymphaea) में यह **खम्भ** व **स्पंजी** ऊतक में विभेदित होता है।

3. **संवहन** ऊतक अत्यधिक **ह्रासित** होते हैं। जल निर्गत पर्णों में यह सुपरिवर्धित ो है।

4. **यान्त्रिक** (mechanical) ऊतक का अभाव होता है।

II मरुद्भिद् (Xerophytes)

मरुदभिद वे पौधे होते हैं जो अपेक्षाकृत **शुष्क स्थान** में उगते हैं। आकारिकी

चित्र 2.9 मॉसलोदभिद पादप
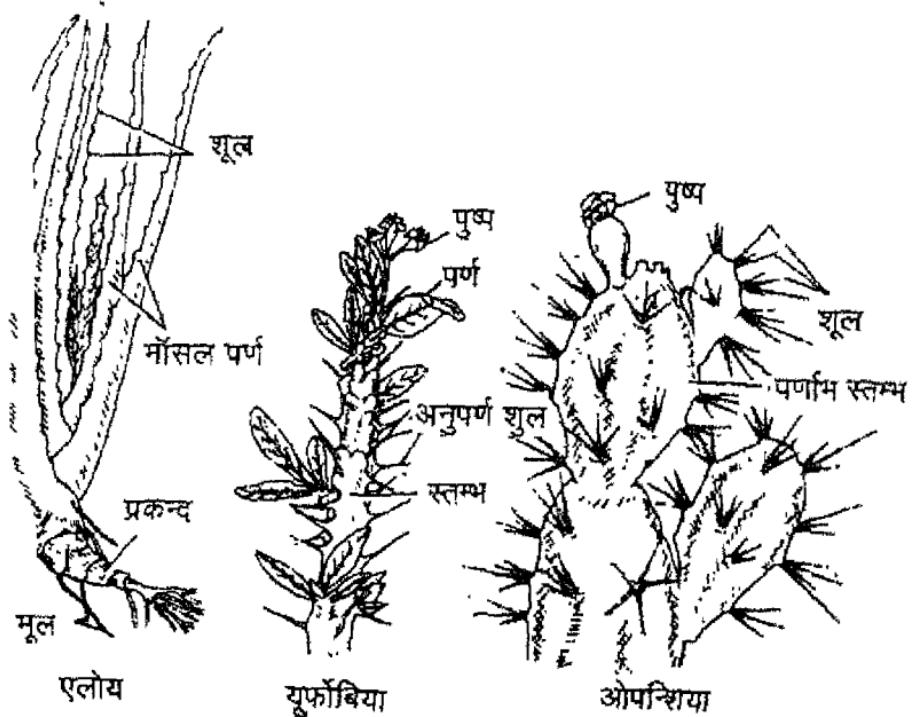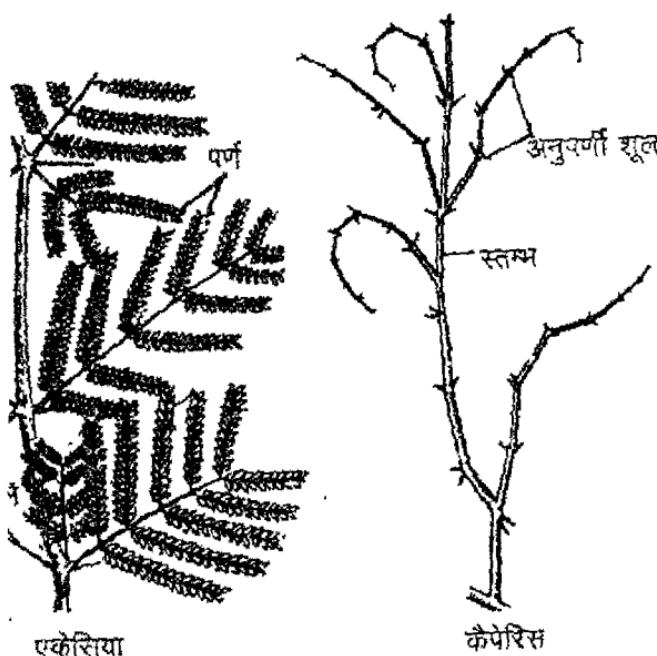
चित्र 2.10 चिरस्थायी अमॉस्ल पादप

कायिकी (physiology) तथा जीवन चक्र (life cycle) के आधार पर
न चार वर्गों में बाँटा गया है।

ालिक (Ephemerals) – ये पौधे सूखे क्षेत्रों में पाए जाते हैं। ये अपना
पड़ने से पूर्व 6-8 हफ्तों में पूरा कर लेते हैं अतः इन्हें जलाभाव **पलायनी**
ping) अथवा (drought evading) पौधे कहते हैं। वस्तुतः ये शुष्क
ा ही नहीं करते थे, शुष्कता से बचते हैं। इनका आकार छोटा होता है
ानाा में प्ररोह अधिक लम्बे होते हैं। उदाहरण **आर्जिमोन मेक्सिकाना**
·xicana), सोलेनम जेन्थोकार्पम *(Solanum xanthocarpum)* केसिया
ra) इत्यादि।

ोद्भिद् (Succulents) – ये पौधे उन स्थानों पर उगते हैं जहाँ मृदा में
इन पौधों के विभिन्न अंग स्तम्भ, पर्ण, व मूल **माँसल या गुदेदार** होते
नक वर्षा ऋतु में मिलने वाले पानी को ये विशेप **जल-संग्रह ऊतकों**
e tissues) में एकत्रित करके रखते हैं। इस पानी को ये पौधे
उपयोग में लाते हैं। उदाहरण **एलोय** *(Aloe)*, **यूफोर्बिया** *(Euphorpia)*,
ntia) इत्यादि।

ायी अमाँसल (Perennial non-succulents) – ये पौधे **जलाभाव** सह

(drought resistant) होते हैं। ये उन स्थानों पर उगते हैं जहाँ मृदा में पानी नहीं होता तथा इनके ऊतकों में जल संग्रह की क्षमता भी नहीं होती। इन पौधों के **अन्तः वातावरण** मे भी पानी की कमी होती है। ये बहुवर्षी होते हैं तथा इनमें कई आकारिकी (*morphological*), शरीरिय (*anatomical*) व शरीर क्रियात्मक (*physiological*) अनुकूलन होते हैं जो इन्हें शुष्क अवस्थाओं का प्रतिरोध करने में सक्षम बनाते हैं। इन पोधों को **वास्तविक मरुद्भिद** कहा जा सकता है। उदाहरण **कैलोट्रॉपिस प्रोसिरा** (Calotropis procera), **एकेसिया निलोटिका** (Acacia nilotica), **जिजिफस जुजुबा** (Zizyphus jujuba), **केजुएराइना** (*casuarina*), **सैकेरम** (*saccharum*), **साल्वेडोरा** (*Salvadora*) **कैपेरिस** डेसिडुआ (Capparis decidua) इत्यादि।

मरुद्भिदों में पारिस्थितिक अनुकूलन (Ecological adaptation in xerophytes)

आकारिकी लक्षण (External Morphological features)

जड़ें (Roots) –

1. **मूल तंत्र** (root system) सुविकसित, अति शाखित और फैला हुआ होता है। जड़े मृदा में गहराई तक पहुँचती हैं। **कैलोट्रॉपिस** (Calotropis) में जड़ें 30 मीटर तक लम्बी हो जाती हैं।

2. इनमें सामान्यतः **मूसला मूलतंत्र** होता है।

3. **मूल रोम** व **मूल गोप** सुपरिवर्धित होते हैं।

4. कई मरुद्भिदों में मूल मॉसल हो जाती है तथा जल संग्रहण करती है।

प्ररोह (Shoot)

1. **स्तम्भ** धीमी वृद्धि वाला कम लम्बा कठोर एवं काष्ठीय (woody) होता है।

2. तने पर मोम (wax), सिलिका (silica), रोम (hairs) इत्यादि का आवरण पाया जाता है।

3. कुछ पौधों में तने **अवरुद्ध** (stunted) तथा **मॉसल** होते हैं।

4. कुछ तने **रुपान्तरित** भी हो जाते हैं जैसे नागफनी (Opuntia) में तना पत्ती जैसा हो जाता है व पत्तियाँ काँटों में रुपान्तरित हो जाती हैं इसे पर्णाभस्तम्भ (phyllocladi) कहते हैं। **एस्पेरेगस** (Asparagus) **रस्कस** (Ruscus) में पर्व (*internode*) पत्ती में रुपान्तरित हो जाता है इसे पर्णाभपर्व (cladode) कहते हैं।

पर्ण (Leaves)

पत्तियों के आधार पर मरुद्भिदों के चार वर्ग बनाए जाते हैं।

(i) दृढपर्णी (Sclerophyllous) – **बैन्कसिया** *(Banksia)*, **डेसिलिरिऑन** (Dasilirion) इत्यादि।

(ii) रोमपर्णी (Trichophyllous) – **नीरियम** *(Nerium)*, **कैलोट्रापिस** (Calotropis) इत्यादि।

(iii) लघुपर्णी (Microphyllous) – **एस्पेरेगस** *(Asparagus)* **केजुराइना**

(Casuarina) , **पाइनस** *(Pinus)* इत्यादि।

(iv) मृदुपर्णी (Malacophyllous)—**बिगोनिया** *(Begonia)* **सैलिकॉर्निया** (Salicornia) इत्यादि।

पर्ण अनुकूलन—

1. सामान्यतः पर्ण अत्यन्त ह्रासित, छोटे, शल्क सदृश्य होते हैं जो कि अनुकूल ऋतु के पश्चात् झड़ जाते हैं।

2. कुछ पौधों में पर्ण **काँटों** में रुपानान्तरित हो जाते हैं।

3. पर्ण फलक **लम्बा, संकरा या सूच्याकार** (needle like) जैसे पाइनस (Pinus) में या कई **छोटी पूर्णकों** में विभक्त रहता है जैसे **एकेसिया** (Acacia) में।

4. अपर्णपाती हरी पत्तियाँ जब भी उपस्थित होती हैं, ये **मोटी, गूदेदार दृढ़ व चर्मिल** होती हैं।

5. पर्ण सतह **चमकीली** होती है व प्रकाश तथा ऊष्मा को परावर्तित करती है।

6. कई एकबीजपत्री मरुदभिद उदाहरण एम्मोफिला (Ammophila) व **एग्रोपायरॉन** (Agropyron) में पर्ण सतह ऊपर की ओर मुड़रर **वेल्लित** हो जाता है और रन्ध्रों पर सीधा प्रकाश नहीं पड़ता है जिससे कि वाष्पोत्सर्जन दर कम हो जाती है।

प्रजनन (Reproduction)

अधिकांश मरुद्भिद् अपने स्थायी अंगों जैसे तना द्वारा प्रजनन करते हैं। जल की प्राप्ति के पश्चात् ये फूलों द्वारा भी प्रजनन करते हैं।

शारीरिय लक्षण (Anatomical features)

प्रमुख सामान्य लक्षण (Major common characters)—शारीरिय रुपान्तरण मुख्यतः (i) **वाष्पोत्सर्जन** की दर को नियमित करने (ii) मृदा से अधिक **जल अवशोषण** के लिए विशिष्ट संरचनाओं के विकास के लिए और (iii) जल को पौधों में अधिकतम समय तक रोकने के लिए होते हैं।

कुछ सामान्य शारीरीय रूपान्तरण निम्न प्रकार से हैं।

1. पत्तियों एवं तने की **बाह्य त्वचीय** कोशिकायें **मोटी** हो जाती हैं।

2. प्रकाश को परिवर्तित करने के लिये बाह्य त्वचीय कोशिकाओं पर **मोम** की परत होती है।

3. पत्तियों पर प्रति इकाई क्षेत्रफल में **रन्ध्रों** की संख्या अत्यन्त **कम** होती है।

4. अधिकांश **रन्ध्र मग्न** (sunken) होते हैं।

5. बाह्य त्वचा के ऊपर एक **मोटी उपत्वचा** (cuticle) होती है।

6. बाह्य त्वचा के ऊपर व रन्ध्रीय छिद्रों के चारों ओर **रोमों** की एक घनी परत होती है। रोमों के बीच प्रायः वायु भरी होती है जिससे एक रोधी (insulating) परत बन जाती है जो तापमान का नियंत्रण करती है।

7. प्रकाश की आवश्यक मात्रा को प्राप्त करने के लिए बाह्य त्वचीय कोशिकाएँ अरीय (radial) रूप से लम्बी होती हैं।

चित्र 2.11 कैजुराइना तने का अनुप्रस्थ काट (अ) रूपरेखा (ब) एक भाग कोशिकीय
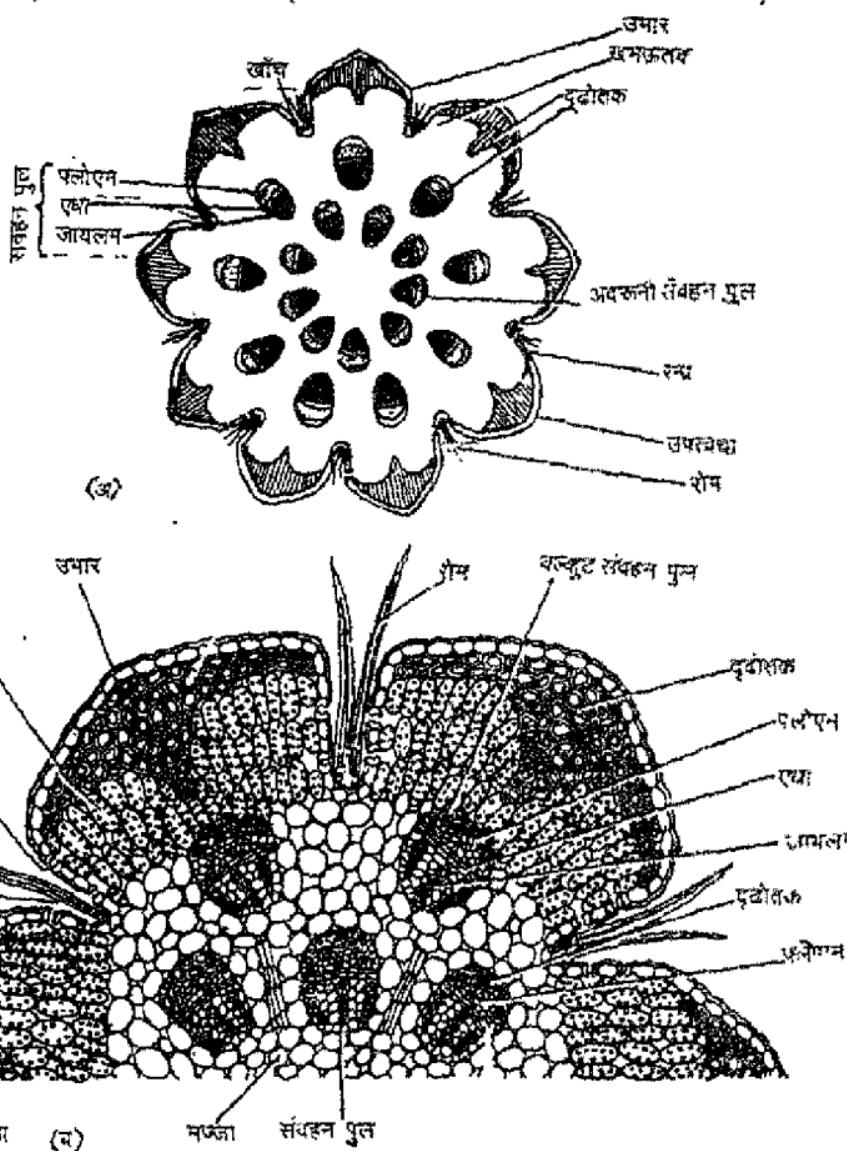
8. यदि पत्तियाँ छोटी, ह्रासित (reduced) अथवा अनुपस्थित होती हैं तो त
कुल में खम्भ ऊतक (palisade) अथवा हरित ऊतक (chlorenchyna) पाया
।

9. **अन्तरकोशिकीय अवकाश** (intercellular spaces) छोटे और कम होते

10. **स्थूल कोणोतक** (Collenclayma) और **दृढ़ोतक** (sclerenchyma)
त्रिक (mechanical) ऊतकों की मात्रा अधिक होती है।

11. संवहन ऊतक **सुविकसित** होते हैं।

समोद्भिद (Mesophytes)

ये पौधे स्थल पर **विस्तृत वितरित** हैं। ये नम आवासों में अधिक वा
erated) मृदा में उगते हैं। इनके गुणों के आधार पर इन्हें जलोद्भिदों व मरुद
बीच वाले स्थान पर रख सकते हैं। ये चौड़े बड़े पर्णों वाले वृक्ष होते हैं जो
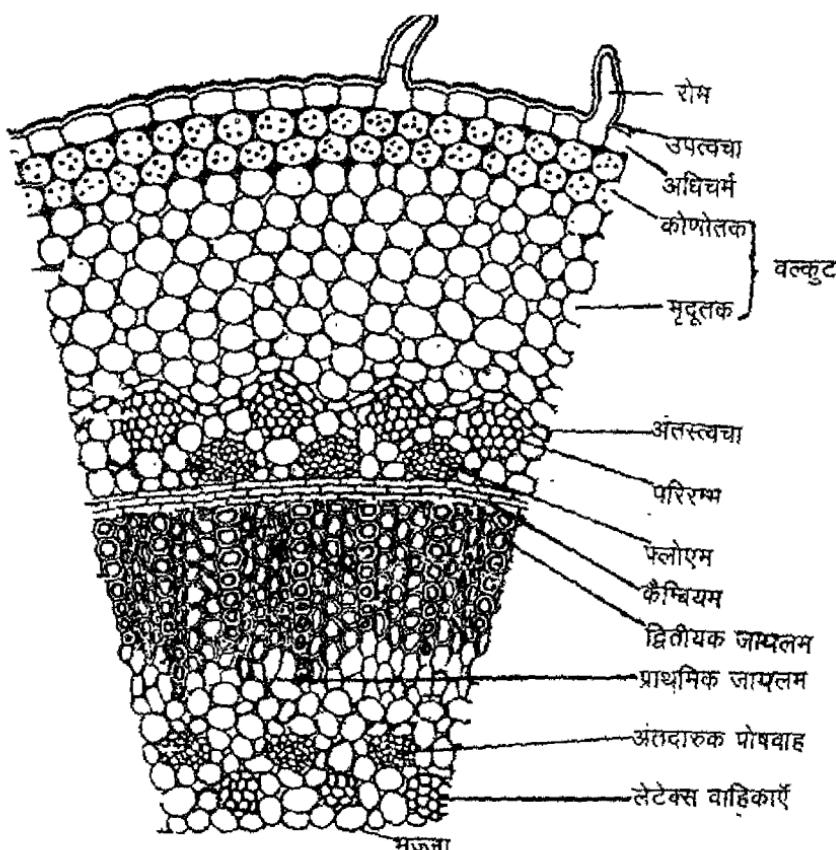
चित्र 2.12 कैलोट्रॉपिस स्तम्भ की अनुप्रस्थ काट

झीलों व नदी के तट पर मिलते हैं। जलोद्भिदों व मरुद्भिदों में पाये जाने वाले वि
अनुकूलन समोद्भिदों में नहीं पाए जाते।

समोद्भिदों के सामान्य आकारिकी व शारीरिय गुण निम्न प्रकार हैं—

1. सुपरिवर्धित व शाखित **मूलतंत्र**। मूलगोप व मूल रोम पाए जाते हैं।

2. **स्तम्भ** प्रायः वायुव, ठोस और शूक्ष्म शाखित होता है।

3. **पर्ण** प्रायः बड़े व चौड़े, पतले, कोमल व विभिन्न आकृति के होते हैं जो सतह के समानान्तर क्षैतिज स्थिति में रहते हैं। ये हरे तथा इन पर रोम व मोमी स्त पाए जाते।

4. वायुव भागों पर सामान्य मोटी उपत्वचा होती है।

5. **अधिचर्म** सुविकसित होती है लेकिन अधिचर्म कोशिकाओं में हरित लव होते।

6. **पर्णरंध्र** पर्ण की दोनों सतहों पर होते हैं।
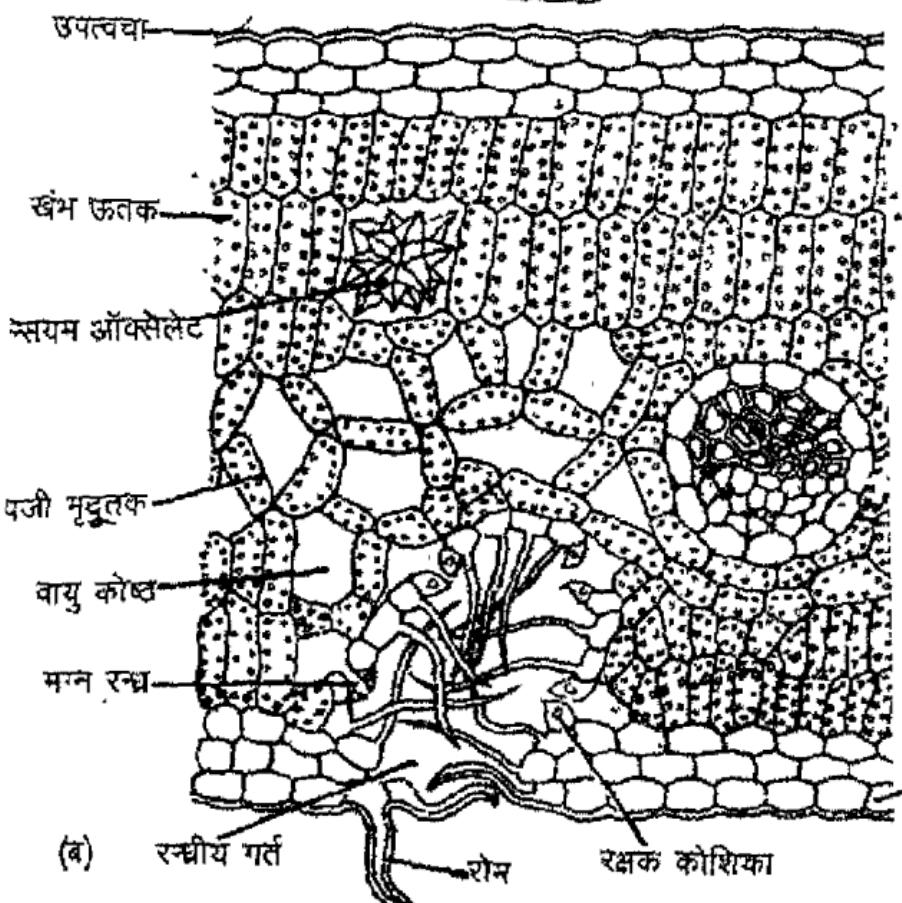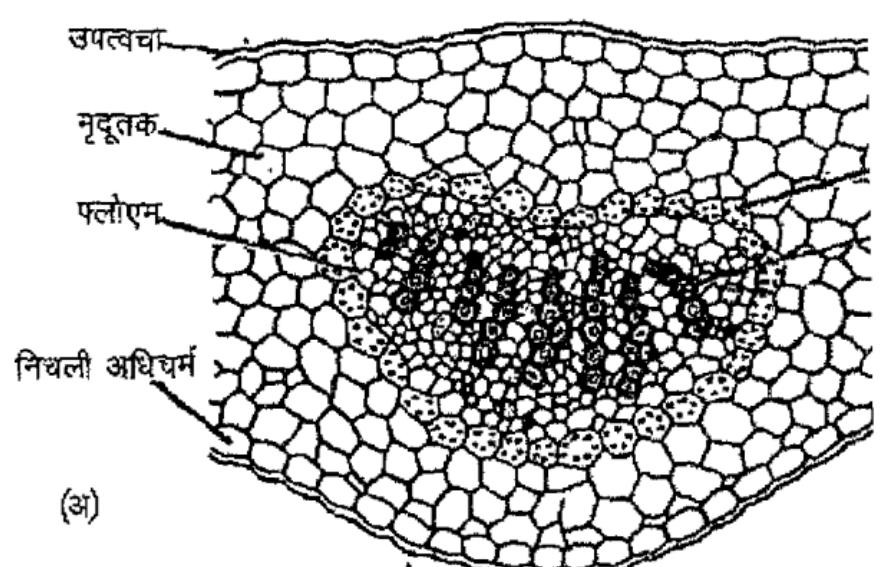
चित्र 2.13 नीरियम की पत्ती का अनुप्रस्थ काट (अ) मध्यशिरा (ब) पत्रद

7. **पर्ण मध्योतक खम्भ** (palisade) व स्पंजी (spongy) ः
है। अन्तरकोशिकीय-अवकाश (intercellular spaces) पाए ज

8. **संवहन ऊतक** (vascular tissues) एवं **यान्त्रिक ऊतक**
es) सुविकसित होते हैं।

9. दोपहर में ये पादप अस्थायी म्लानता (temporary wilti

IV लवणोद्‌भिद (Halophytes)

समुद्री या लवणीय झीलों (उदाहरण—साँभर झील) के किनारे व

वात रन्ध्र

न्युमेटोफोर

सामान्य मूल

.14 (अ) लवणोंदभिद में न्युमेटोफोर
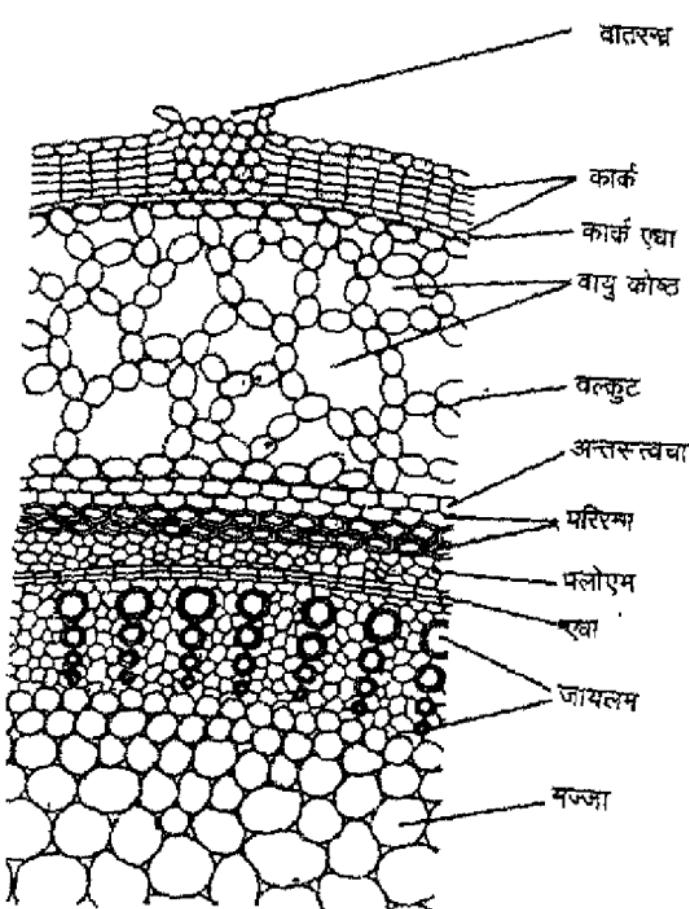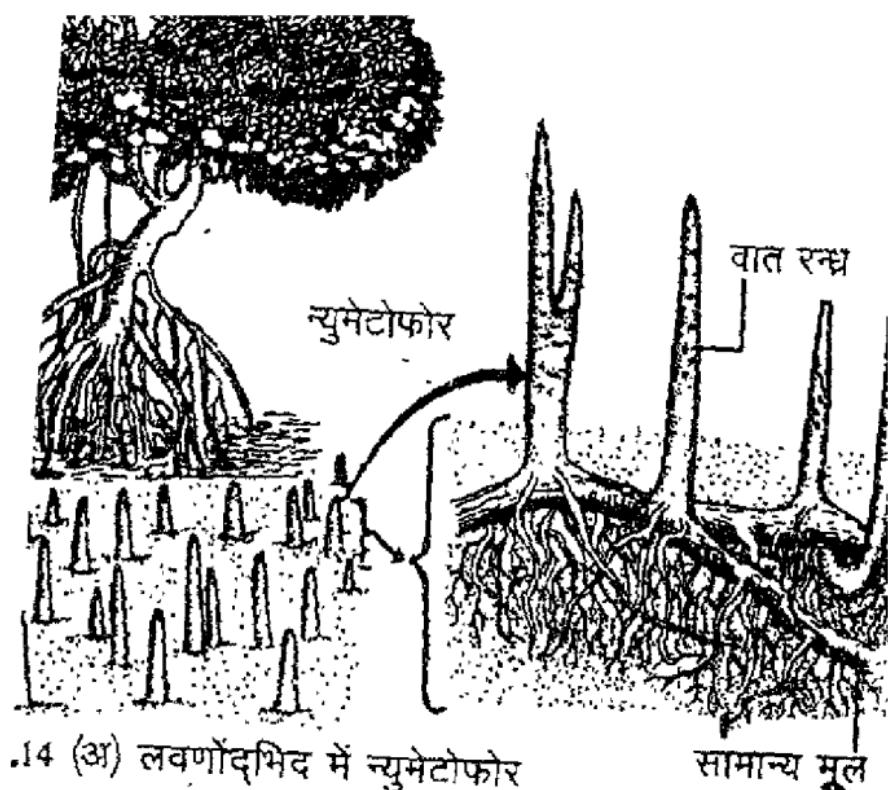
चित्र 2.14 (ब) न्युमेटोफोर मूल का अनुप्रस्थ काट

की मात्रा बहुत अधिक होती है NaCl, $MgCl_2$ तथा $MgSO_4$ जैसे लवणों की अधिकता से मृदा का परासरण दाब पादप कोशिका के परासरण दाब से बहुत बढ़ जाता है। इस प्रकार की मिट्टी में उगने वाले पौधों की जड़ें आसानी से जल अवशोषण नहीं कर सकती। मृदा के भौतिक रूप से पानी उपस्थित होते हुए भी शरीर क्रियात्मक दृष्टि से पादप के लिए वह पानी उपयोग में नहीं आ सकता। इस स्थिति को **शरीर क्रियात्मक शुष्कता** (physiological dryness) कहते हैं। इन स्थानों पर उगने वाले पौधों में इस कारण विभिन्न परिवर्तन आ जाते हैं। इन पौधों को **लवणोद्भिद् (Halophytes)** कहा जाता है।

लवणोद्भिद् पौधों के प्रकार (Types of Halophytes)

(i) **लिथोफिलंस** (*Lithophilous*)—ये लवणीय पत्थरों व चट्टानों पर उगते है।

(ii) **सेमोफिलस** (Psammophilous)—ये पौधे लवणीय बालू में उगते हैं।

(iii) **पीलोफिलयस** (Pelophilous)—लवणीय कीचड़ (mud) में उगने वाले पौधे।

(iv) हीलोफिलस (*Helophilous*)- लवणीय दलदल (*swamp*) में उगने वाले पौधे। इन्हें फिर दो भागों में विभक्त किया जाता है—

(a) **साल्ट स्वैम्प** (Salt swamp salt desert)

(b) **लिटोरल स्वैम्प-फोरेस्ट** (mangroove)

भारत में बम्बई के पास ऐलीफेंटा गुफाओं के पास, केरल के समुद्री तटों, गोदावरी के किनारों, कलकत्ता के पास हुबली के किनारे, सुन्दर बन, अण्डमान निकोबार आदि स्थानों तथा राजस्थान में सांभर झील के आसपास लवणदोभिद् पौधे उगते हैं। **रायजोफोरा** (Rhizophora), **सोनेरेसिया** (Sonneratia), **सेलिकोर्निया** (Salicornia), **सुएडा** (Suaeda), **सालसोला** (Salsola), **एट्रीप्लेक्स** (Atriplex) आदि यहाँ पर सामान्य रूप से उगाते हैं।

लवणोद्भिद पौधों में पारिस्थितिक अनुकूलन (Ecological adaptations in halophytes)

बाह्य आकारिकी लक्षण (External Morphological features)

मूलतंत्र (Root system)

1.–इन पौधों में दो प्रकार की जड़े धनात्मक गुरुत्वानुवर्ती (+ve geotropric या *subterranean*) तथा ऋणात्मक गुरुत्वानुवर्ती (-vegeotropic or aerial) होती हैं। मैंग्रूव में दूसरे प्रकार की जड़ें अच्छी तरह विकसित होती हैं। इन पर छोटे-छोटे वातरंध्र भी उपस्थित होते हैं। जिनके माध्यम से जड़े श्वसन कर सकती है। अधिक जल व लवणों के कारण मिट्टी में वायु नहीं रहने के कारण इस प्रकार की जड़ों की आवश्यकता होती है। इन विशेष प्रकार की जड़ों को **न्यूमटोफोर** (pheumatophores) कहते हैं। लवमोदभिद् पौधों में अपस्थानिक जड़ें (adventitious roots) भी मिलती हैं जिन्हें **प्रोटा जड़े** (prota roots) कहते हैं।

प्ररोह तंत्र (Shoot system)—मरुद्‌भिद्‌ पौधों की तरह तने छोटे व कठोर होते हैं। कुछ पौधों के तने **माँसल** (succulent) हो जाते हैं तथा रोमों मे ढ़के रहते हैं।

पत्तियाँ (Leaves)

इन पादपों में पत्तिया अनुपस्थित, अल्पविकसित या माँसल प्राकर की होती हैं।

प्रजनन—ये पौधें चूँकि **जलाक्रान्त** (water-logged) स्थानों पर उगते हैं। अत बीजों के नष्ट होने के अनेक कारण हो जाते हैं। अतः इन पौधों में **सजीव प्रजता** (Vivipary) मिलती है। फल जब मातृ पादप पर ही होते हैं उस समय फलों के अन्दर ही बीजों का अंकुरण हो जाता है। अंकुरित अवस्था में बीज नीचे जमीन पर आते है तो उनके जीवित (survival) रहने की संभावना बढ़ जाती है।

शारीरिय लक्षण (Anatomical features)

1. इन पौधों की जड़ों व तनों की सतह पर **बहुस्तरीय कार्क** (cork) पाया जाता है।

2. सम्पूर्ण पौधे की अधिचर्म पर **मोटीउपचर्म** (cuticle) मिलती है।

3. वल्कुट की मृदूतक कोशिकाओं में **तेल** (oil) व **टेनिन** (tannin) संग्रहित होता है। कुछ कोशिकाओं में **कैल्सियम ऑक्सेलेट** (Calcium Oxalate) के कण पाये जाते हैं।

4. जड़ों व तनों में **म्यूसीलेज** (mucilage) कोशिकाएँ भी मिलती हैं।

5. **यांत्रिक ऊतक** (mechanical tissues) व **संवहन ऊतक** (conducting tissues) अधिक विकसित होते हैं।

6. पत्तियों में धंसे हुए रंध्र (sunken somata) निचली सतह पर मिलते हैं।

7. श्वसन के समय कार्बनिक अम्लों (Organic acids) का निर्माण होता है।

8. पौधों की कोशिकाओं में **उच्च परासरण दाब** (30 वायुमंडलीय दाब से अधिक) मिलता है। जिससे लवणयुक्त मृदा से पानी अवशोषण करने में सहायता मिलती है।

अध्ययन बिन्दु

1. जीवधारी में होने वाले ऐसे परिवर्तन जिनसे उनमें विषम परिस्थितियों को सहन करने की क्षमता विकसित होती है **अनुकूलन** कहलाते हैं।
2. जल की उपलब्धता के आधार पर पौधों में विभिन्न प्रकार के अनुकूलन मिलते हैं।
3. जल में उगने वाले पौधे **जलोद्‌भिद** कहलाते हैं। ये **आकारिकी** व **शारीरिय अनुकूलन** द्वारा अपने आपको जातीय वातावरण के अनुकूल बनाते हैं।
4. अपेक्षाकृत शुष्क स्थानों में उगने वाले पौधे मरुद्‌भिद कहलाते हैं। इनके भी जड़, तना, पत्ती इत्यादि भागों में आकारिकी व शारीरिय अनुकूलन मिलते हैं।
5. नम आवासों व वातनीय मृदा में उगने वाले पौधे **समोद्‌भिद** कहलाते हैं। गुणों के आधार पर ये जलोद्‌भिदों व मरुद्‌भिदों के बीच वाले स्थान में आते हैं।
6. लवणीय मिट्टी में उगने वाले पौधे **लवणोद्‌भिद** कहलाते हैं।

अध्याय-3

पारिस्थितिक

(ECOSYSTEM)

पारिस्थितिक समूह का तात्पर्य (Meaning of Ecosystem)

जब किसी पादप समुदाय का अध्ययन करते हैं तो उसको प्रभावित करने वाले तमाम दूसरे जैविक (biotic) तथा अजैविक (abiotic) कारकों का भी अध्ययन करना होता है। जैविक तथा अजैविक घटकों के बीच जटिल प्रतिक्रियाएँ (complex interactions) होती रहती हैं जिससे वातावरण की संरचना बदलती रहती है और उसे गतिशील (*dynamic*) कहा जाता है। **ऐसे कार्यरत तंत्र को जहाँ जैविक (biotic) व अजैविक (abiotic) पदार्थों के बीच प्रतिक्रियाएँ होती रहती हैं, और विभिन्न पदार्थों का आदान-प्रदान होता है—पारिस्थितिक तंत्र (Ecoystem) कहते हैं।**

Ecosystem शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम **टेन्सले** (Tansley, 1935) ने किया। पारिस्थितिक तंत्र छोटे, बड़े अथवा क्षेत्रीय हो सकते हैं। ये छोटे बड़े पारस्थितिक तंत्र मिलकर एक विशाल पारिस्थितिक तंत्र पृथ्वी का निर्माण करते हैं जिसे **जीव-मण्डल** (biosphere) कहते हैं।

किसी भी पारिस्थितिक तंत्र में चार बातें होनी आवश्यक हैं। 1. ऊर्जा स्रोत (energy source) 2. अजैविक (abiotic) पदार्थ 3. जीव (organisms) 4. ऐसी विधियाँ जिनमें होकर पदार्थों तथा ऊर्जा का चक्रीय प्रवाह (*cyclic flow*) हो सके।

पारिस्थितिक तंत्र : वर्गीकरण (Ecosystem : Classification)

जीवमण्डल (*biosphere*) में प्रमुख पारिस्थितिक तंत्र निम्न प्रकार के होते हैं।

I. प्राकृतिक परिस्थिति तंत्र (Natural ecosystems)

ये प्रकृति में मिलते हैं तथा मानव का इनमें कोई हस्तक्षेप नहीं होता। ये दो प्रकार के होते हैं—

1. स्थलीय (Terrestrial)—उदहाण वन (forest), घास स्थल (grass land), मरुस्थल (desest) इत्यादि।

2. जलीय (Aquatic)—ये पुनः दो प्रकार के होते हैं

(i) ताजा जलीय (fresh water)—ये प्रवाही जलीय **(botic)** उदाहरण नदी नाले, झरने स्रोते इत्यादि अथवा स्थिर जलीय (Lertic) उदाहरण—तालाब, झील इत्यादि।

(ii) **समुद्री** (Marine)—अपेक्षाकृत कम गहरे समुद्र व महासागर।

II. कृत्रिम अथवा मानव निर्मित पारिस्थितिक तंत्र (Artificial or

man engineered ecosystem)

ये कृत्रिम रूप से **मानव द्वारा निर्मित** व संचालित किए जाते हैं। ऐसे तंत्र में मानव जैविक (biotic) व अजैविक (abiotic) घटकों को नियंत्रित करने का प्रयास करता है। उदाहरण—मक्का, गेहूँ, चावल इत्यादि फसलों के खेत तथा अंतरिक्ष पारिस्थितिक तंत्र (space ecosystem)
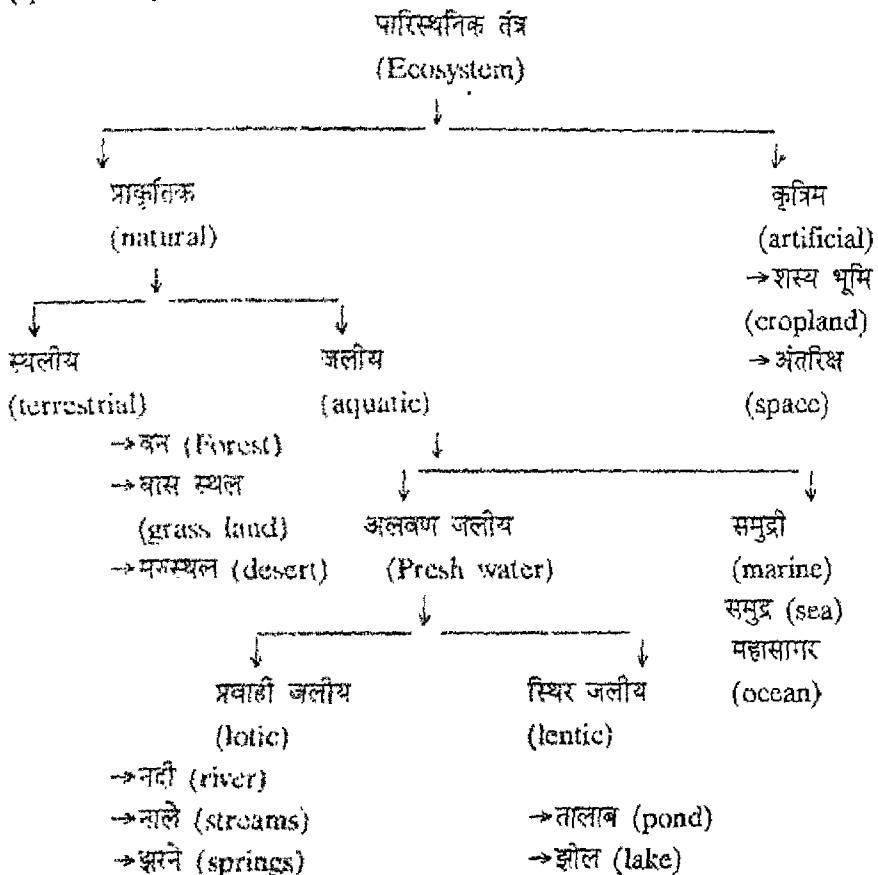
पारिस्थितिक-तंत्र की संरचना (Structure of an ecosystem)

I. जैविक घटक (*Biotic components*)

II. अजैविक घटक (*Abiotic compancnts*)

I. जैविक घटक (*Biotic compancnts*)

इनका पारिस्थिक-तंत्र में प्रमुख स्थान होता है। सभी प्रकार के जैविक घटकों को हम क्रियात्मक दृष्टिकोण से दो प्रमुख भागों में बाँट सकते हैं।

(I) **स्वपोषित अवयव** (Autotrophic components)

स्वपोषी अवयवों में प्रकाश ऊर्जा (light energy) के उपयोग द्वारा सरल कार्बनिक

पदार्थों (organic substances) के संश्लेषण की क्षमता होती है। प्रकाश संश्लेषण (photosynthesis) में सक्षम हरे पौधे, नील हरित शैवाल (blue green algae), हरे शैवाल (green algae), प्रकाश संश्लेषी जीवाणु (photosynthetic bacteria) और कीमोसिंथेटिक जीवाणु (chemosynthetic bacteria) सभी स्वपोषी अवयव हैं। ये अपना भोजन स्वयं तैयार करते हैं। अत. इन्हें **उत्पादक** (Producer) कहते हैं।

(2) परपोषित अवयव (Heterotrophic components)

परपोषी अवयव स्वयंपोषियों द्वारा संश्लेषित पदार्थों पर निर्भर रहते हैं। ये अपना भोजन स्वयं बनाने में असमर्थ होते हैं। उत्पादकों द्वारा तैयार भोजन का उपभोग करने के कारण इन्हें **उपभोक्ता** (consumes) कहते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं।

(i) **वृहत उपभोक्ता** (Macroconsumers) – ये तीन प्रकार के होते हैं—शकाहारी (herbivoves), माँसाहारी (cornivares) तथा सर्वाहारी (omnivores) शाकाहारी अपना भोजन हरे पौधों अथवा उत्पादकों से प्राप्त करते हैं। अतः ये **प्राथमिक उपभोक्ता** (primary consumers) कहलाते हैं उदाहरण कीड़े, मकोड़े, गिलहरी, खरगोश इत्यादि। मॉसाहारी अपना भोजन केवल शाकाहारियों या अन्य माँसाहारियों के माँस को खाकर ही प्राप्त करते हैं, उदाहरण शेर, चीता, छिपकली इत्यादि। ये **द्वितीय श्रेणी के उपभोक्ता** (secondary consumers) होते हैं। सर्वाहारी अपना भोजन हरे पौधों, शाकाहारियों एव मॉसाहारियों सबको खाकर प्राप्त कर लेते हैं, उदाहरण विविध प्रकार के पक्षी, मछलियाँ, कुत्ते, बिल्ली इत्यादि। इन्हें **तृतीय श्रेणी के उपभोक्ता** (tertiary consumers) कहते हैं।

(ii) **सूक्ष्म उपभोक्ता** (Micro-consumers) – ये मृत अथवा जीवित शरीर में पाए जाने वाले जटिल यौगिकों का अपघटन करते हैं तथा उनमें से अकार्बनिक पोषक तत्त्वों को स्वपोषियों के उपभोग हेतु पर्यावरण में मुक्त करते हैं। इन्हें **अपघटक** (decomposers) कहते हैं। इनमें मुख्यतः मृतपोषी (saprophytic) जीव जैसे जीवाणु तथा कवक आते हैं।

II. अजैविक अवयव (Abiotic components)

किसी पारिस्थितिक तंत्र में पाए जाने वाले सभी निर्जीव पदार्थ उसके अजैविक अवयव कहलाते हैं। ये तीन प्रकार के होते हैं।

1. अकार्बनिक पदार्थ (Inorganic substances) – अकार्बनिक पदार्थ जैसे सल्फर, कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, ऑक्सीजन इत्यादि जीवन के लिए आवश्यक तत्त्व (vital elements) हैं। चक्रण (cycling) के द्वारा ये तंत्र में सदैव उपलब्ध रहते हैं।

2. कार्बनिक पदार्थ (Organic substances) – एमीनो एसिड, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट लिपिड़ और कुछ अन्य अत्यन्त संगठित अणु जैसे DNA, RNA तथा ATP इत्यादि कार्वनिक पदार्थ हैं। अकार्बनिक पदार्थ, कार्बनिक पदार्थों को बनाते हैं। मृत्यु के पश्चात् जीवधारियों के कार्बनिक पदार्थ अपघटन द्वारा पुनः अकार्बनिक पदार्थों में परिवर्तित हो जाते हैं।

3. जलवायु (Climate) – यह एक जटिल अवयव है जिसमें सौर विकिरण (solar

radiation), जल विविध, गैस इत्यादि की पारस्परिक क्रिया होती रहती है। इन क्रियाओं से ऊष्मा, धूल, तूफान, आँधी, वर्षा, कोहरा, धुँध, बर्फ इत्यादि उत्पन्न होते हैं।

पारिस्थितिक तंत्र के प्रकार्य (*Functions of an ecosysem*)

1. **ऊर्जा का प्रवाह (Flow of energy)**—**उत्पादक** अपना भोजन बनाने के लिए सूर्य से ऊर्जा ग्रहण करते हैं, **उपभोक्ता** भोजन के रूप में उत्पादकों से ऊर्जा ग्रहण करते हैं तथा **अपघटक** उपभोक्ताओं से इस प्रकार उत्पादक—उपभोक्ता—अपघटक भोजन से संबंधित शृंखला से जुड़े होते हैं। जीवीय घटक के इस प्रत्येक स्तर को **पोषण स्तर** (trophic level) कहते हैं।
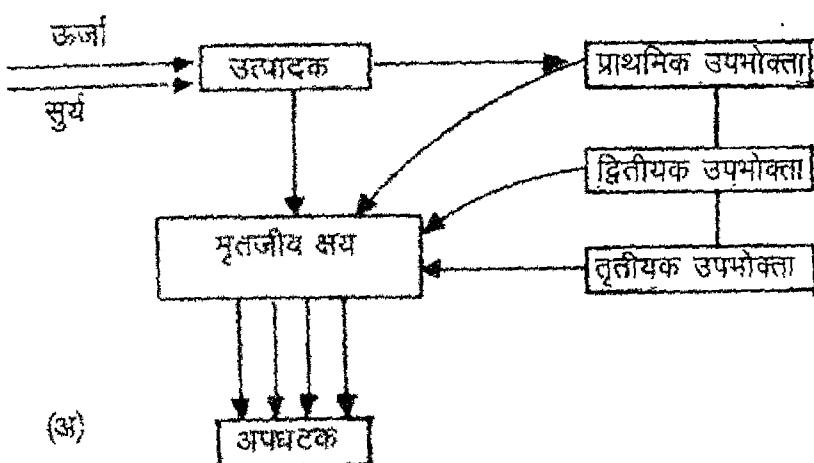
चित्र 3.1 ऊर्जा का प्रभाव

सूर्य से प्राप्त प्रकाश में से लगभग 0.02% प्रकाश प्रकाश संश्लेषण के काम आता है और इसी सूक्ष्म मात्रा पर, पारिस्थितिक तंत्र के जीवधारी निर्भर करते हैं। पारिस्थतिक तंत्र में ऊर्जा का प्रवाह निम्न प्रकार से होता है।

(i) उत्पादक प्रकाश संश्लेषण द्वारा सूर्य के प्रकाश को कार्बनिक पदार्थों में बदल देते हैं। इन पदार्थों में संचित ऊर्जा की कुछ मात्रा उनके द्वारा श्वसन में काम ले ली जाती है।

(ii) ऊर्जा की शेष मात्रा में से कुछ, अगले स्तर के जीवधारी (**उपभोक्ता**) अपने भोजन के रूप में उपयोग में लाते हैं।

(iii) उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं द्वारा काम लिए जाने के पश्चात् शेष बची हुई ऊर्जा उनकी मृत्यु के पश्चात् **अपघटकों** द्वारा उपयोग में ली जाती है।

प्रत्येक स्तर में पायी जाने वाली ऊर्जा की केवल 10% मात्रा ही अगले पोषण स्तर (trophic level) में पहुँच पाती है। इसे **10% नियम** (10% law) कहते हैं।

ऊर्जा का प्रवाह एक दिशीय (unidirectional) होता है तथा ऊर्जा की मात्रा

(ब)
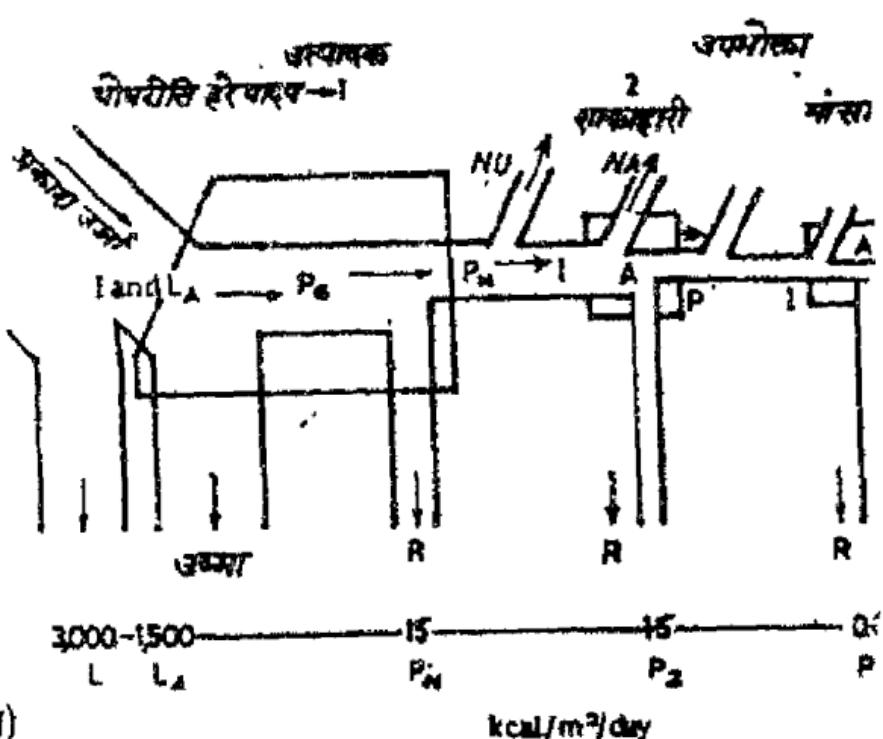
3.1 तीन पोष रीतियों वाले पारितंत्र में ऊर्जा प्रवाह दर्शाने वाला सरल मॉ
ऊर्जा आयात, L_A = वनस्पति द्वारा प्रकाश ऊर्जा– अवशोषण, P_G स
उत्पादन, P_N नेट प्राथमिक उत्पादन, P द्वितीयक उत्पादन, Nu अनु
NA अस्वांगीकृत ऊर्जा, R श्वसन) नीचे की पंक्ति : ऊर्जा आयात
स्थानांतरण स्थलों पर ऊर्जा के ह्रास को दर्शाया गया है।

पर्यावरण
ऊर्जा
क्षय
जल
ऑक्सीजन
CO_2
नाइट्रोजन
सल्फर
फॉस्फोरस
अवशोषण
उत्पादक पौधे
मृत पौधे व जीव
उत्सर्जन
प्राथमिक उपभोक्ता
द्वितीयक उपभोक्ता
तृतीयक उपभोक्ता
अपघटकों द्वारा अपघटन
B
B = श्वसन

चित्र 3.2 भूजीवीय चक्र
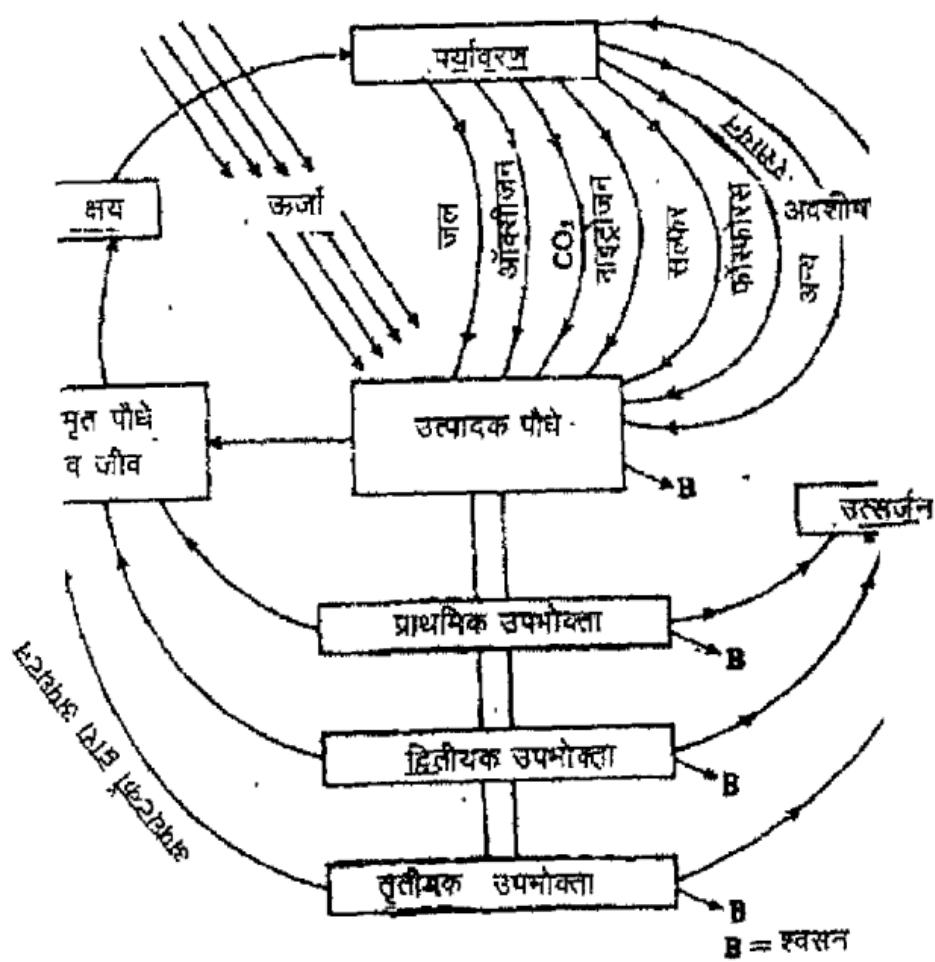
प्रथम पोषण स्तर से अन्तिम पोषण स्तर तक उत्तरोत्तर कम होती जाती है।

प्रकाश ऊर्जा →उत्पादक→ उपभोक्ता →अपघटक

2. खनिज एवं गैस प्रवाह (Mineral and gas circulation)—विभिन्न प्रक के अजैविक पदार्थों को उत्पादक (producers) प्रकाश संश्लेषण द्वारा कार्बनिक पदा में बदल देते हैं। ये कार्बनिक पदार्थ जीवद्रव्य में आत्मसात (assimcate) होकर जी की वृद्धि में सहयोग देते हैं। जीवों की मृत्यु के पश्चात् अपघटन द्वारा ये अकार्बनि पदार्थ वातावरण (environment) में वापस लौट आते हैं। प्रकृति में इस प्रकार के अने चक्र (cycles) चलते रहते हैं। इनको खनिज प्रवाह (mineral circulation) कहते है जैविक तथा अजैविक दोनों प्रकार के घटक निरंतर क्रियाशील रहते हैं अतः इन्हें भू जीवि रासायनिक चक्र (biogeochemical cycles) भी कहते हैं।

(i) कार्बन चक्र (Carbon cycle)

हरे पौधे या उत्पादक, प्रकाश संश्लेषण द्वारा वातावरण की कार्बनडाइ ऑक्सा का उपयोग करके कार्बोहाइड्रेट बनाते हैं। परपोषी (heterotrophs) पौधों को खा आवश्यकतानुसार कार्बन प्राप्त करते हैं। साथ ही सभी सजीव श्वसन के प्रक्रम (proce द्वारा अपने शरीर के कार्बोहाइड्रेटों का ऑक्सीकरण करके उन्हें CO_2 और H_2O में ब देते हैं और वातावरण में छोड़ते रहते हैं। इस प्रकार वातावरण में कार्बन की कमी पूर्ति होती रहती है तथा वातावरण से चली CO_2 स्वपोषी व परपोषी उपभोक्ताओं होती हुई फिर से वातावरण में आ जाती है और CO_2 कार्बन चक्र पूरा हो जाता
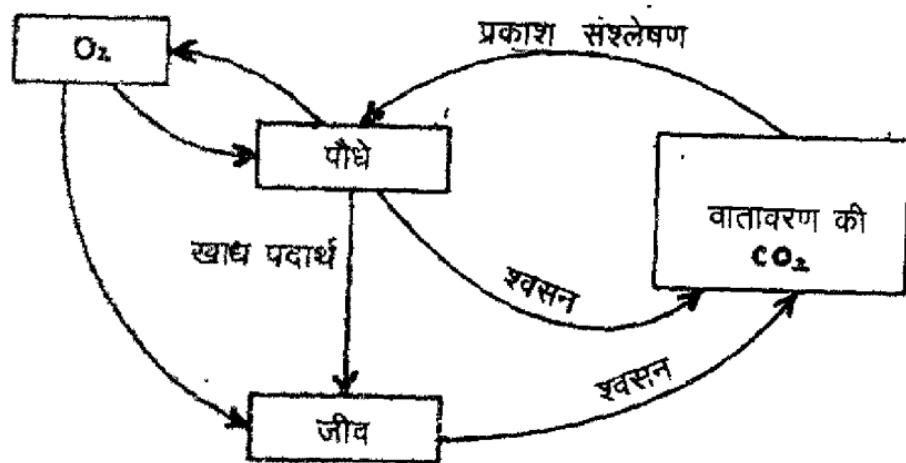
चित्र 3.3 कार्बन चक्र

अजैविक पर्यावरण (abiotic environment) में भी कार्बन विभिन्न रूपों में पाई जा है जैसे CO_2, बाइकार्बोनेट, कार्बोनेट, खनिज कोयला, पैट्रोलियम इत्यादि।

(ii) नाइट्रोजन चक्र (Nitrogen cycle)

नाइट्रोजन (N) जीवन के लिए एक अनिवार्य तत्त्व है। यद्यपि वायुमण्डल
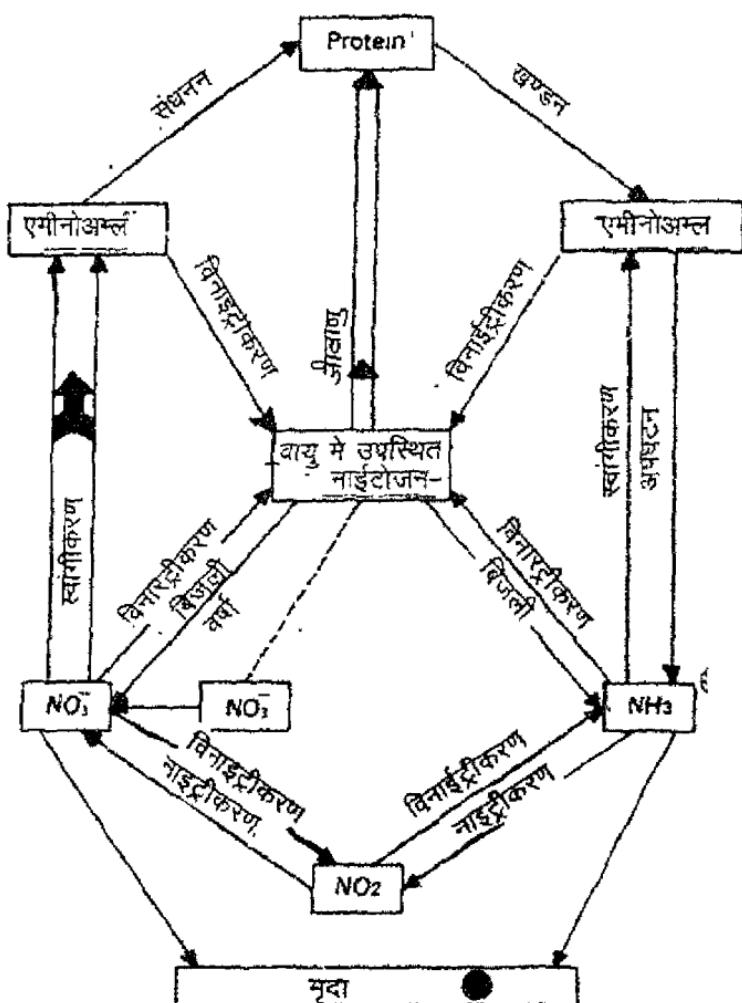
चित्र 3.4 नाइट्रोजन चक्र

79% N है लेकिन पौधे इसे नाइट्रेट लवणों में परिवर्तित किए बिना प्रयोग करनें में सक्षम नही होते। कुछ जीवाणु और दुर्लभ पौधे ही वायु मण्डल की स्वतन्त्र नाइट्रोजन का सीधा उपयोग कर सकते हैं। N का प्रमुख और एक मात्र स्रोत वायुमण्डल ही होता है (चित्र) नाइट्रोजन चक्र के पाँच मुख्य चरण हैं—

1. नाइट्रोजन का योगिकीकरण (Nitrogen fixation) – यह भौतिक रासायनिक (physio chemical) और जैविक (biological) प्रकार से होता है। भौतिक रासायनिक यौगिकीकरण में बादलों से उत्पन्न बिजली और वर्षा के कारण N, ऑक्साइड के रूप में मृदा में आ जाती है।

जैविक यौगिकीकरण में मुक्तजीवी जीवाणु जैसे **एजोटोबैक्टर** (Azotobacter) व **क्लॉस्ट्रीडियम** (*Clostridium*) तथा सहजीवी जीवाणु जैसे **राइजोबियम** (Rhizobium) द्वारा नाइट्रोजन को नाइट्रेट के रूप में स्थिर कर देते हैं। सह जीवी जीवाणु विशेषत

पैपीलियानेसी (Papilionaceae) कुल के पौधों की जड़ों की गंथिकाओं (nodules) मे पाए जाते हैं।

2. नाइट्रोजन का स्वांगीकरण (Nitrogen assimilation)– पौधों की कोशिकाओं में नाइट्रेट से एमीनों अमल व एमिनों अम्लों से प्रोटीन बनते हैं। पौधों की प्रोटीन को प्राणी भोजन रूप में गहण करते हैं।

3. अमोनीकरण (Ammonification)– प्राणियों के मूत्र द्वारा उत्सर्जित यूरिया यूरिक अम्ल इत्यादि तथा मृदा पौधों व प्राणियों के प्रोटीन को अमोनीकारी जीवाणु (ammonifying bacteria) अमोनिया में बदल देते हैं।

4. नाइट्रीकरण (Nitrification) – अमोनियाँ के नाइट्रेट में रूपान्तरण को नाइट्रीकरण कहते हैं। **नाइट्रोसोमोनास** (Nitrosomonas) अमोनिया को. नाइट्राइट को **नाइट्रेट** में व नाइट्रोबैक्टर (Nitrobacter) नाट्राइट बदल देते हैं। जो कि पुनः वातावरण में मिल जाते हैं।

5. विनाइट्रीकरण (Denitrification)– जीवाणु जैसे स्यूडोमोनास (Psuedomonas) मृदा में स्थित नाइट्रेट आयानों का अपचयन कर N गैस में बदल देते हैं जो कि पुनः वातावरण में मिल जाती हैं।

कार्बन व नाइट्रोजन चक्र के जैसे ही लगभग 30–40 खनिज तत्त्व ऐसे हैं जिनका चक्रिक प्रवाह वातावरण में होता रहता है तथा पादपों को वातावरण से प्राप्त खनिज तत्त्व पुनः वातावरण को प्राप्त हो जाते हैं।

3. खाद्य शृंखला (Food chain)

उत्पादक (producers) प्रथम श्रेणी के उपभोक्ताओं (primary consumers) के लिए खाने का स्रोत होते हैं तथा प्रथम श्रेणी के उपभोक्ता (primary consumers) द्वितीय श्रेणी के उपभोक्ताओं (secondary consumers) के लिए खाने का स्रोत होते हैं। इसी प्रकार अपघटक अपने खाद्य पदार्थ के लिए मृत उत्पादक व उपभोक्ताओं पर निर्भर करते हैं। इस खाने और खाए जाने के क्रम को खाद्य शृंखला (food chain) कहते हैं। दूसरे शब्दों में पौधों द्वारा भोजन के रूप में ऊर्जा को संचित करना और फिर पौधों से क्रमशः विभिन्न पोषी स्तरों (trophic levels) के जीवों में भोजन के साथ इस
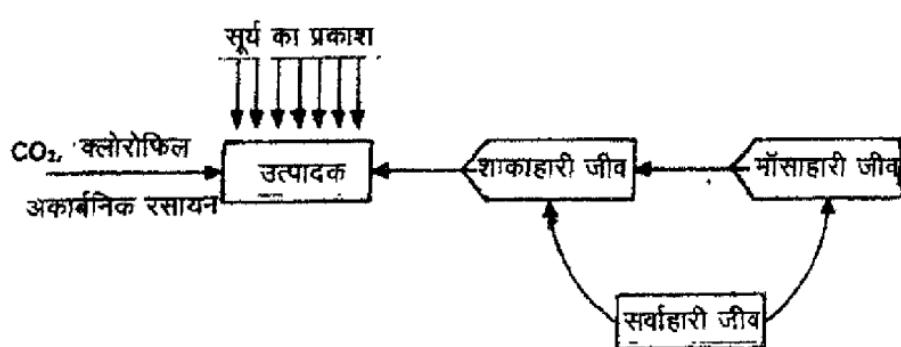
चित्र 3.5 खाद्य आधारित खाद्य शृंखला

ऊर्जा का स्थानांतरण ही खाद्य शृंखला है। इस शृंखला में हरे पौधे प्रकाश संश्लेषण द्वारा भोजन का निर्माण स्वयं करते हैं। इसलिए ये **प्रथम पोषी स्तर** या **उत्पादक स्तर** (producer level) बनाते हैं। इसी प्रकार पौधों को खाने वाले अर्थात् शकाहारी जन्तु अथवा **प्राथमिक उपभोक्ता** (herbivores or primary consumers), द्वितीय पोषी स्तर अथवा **द्वितीयक उपभोक्ता** (second trophic level or secondary consumers) बनाते हैं। शाकाहारी जन्तुओं को खाने वाले माँसाहारी जन्तु अथवा **तृतीयक उपभोक्ता** (carnivores or tertiary consumers) तृतीय पोषी स्तर (third trophic level) बनाते हैं। अन्त में पौधों तथा जन्तुओं दोनों को खाने वाले (omnivores) चतुर्थ पोषी स्तर बनाते हैं।
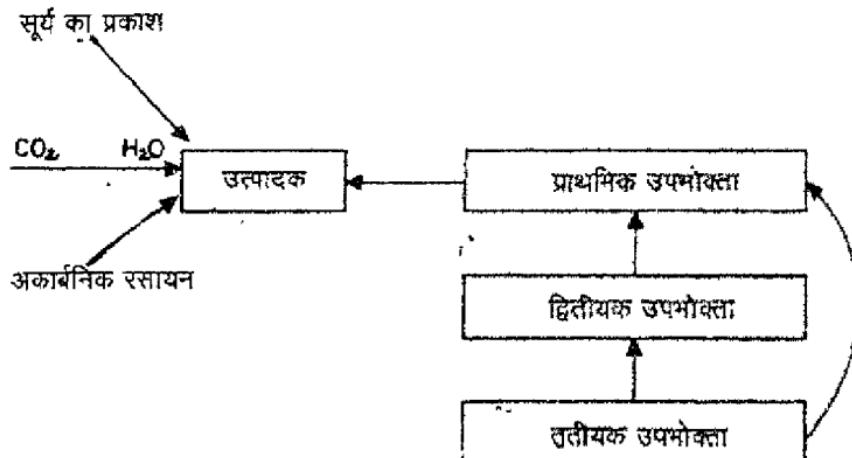
चित्र 3.6 निर्भरता आधारित खाद्य शृंखला

स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र में पौधे →खरगोश→साँप→बाज पाये जाते हैं।

राजस्थान के शाद्वल (meadow) में पाँच स्तर पाये जाते हैं जैसे घास→टिड्डा → मेढ़क →साँप → मोर। महासागर (ocean or marine) में पादप प्लवक → प्राणीप्लवक → छोटी मछलियाँ, बड़ी मछलियाँ → सबसे बड़ी मछलियाँ, पाये जाते हैं। ताल (Pond अथवा Presh water) में शैवाल → प्रोटोजोआ → छोटे जलीय कीट → बड़े जलीय कीट → छोटी मछलियाँ → बड़ी मछलियाँ, पाए जाते हैं।

खाद्य शृंखला तीन प्रकार की हो सकती है—

(i) परभक्षी शृंखला (The predator chain)—यह पौधों से प्रारम्भ होती है। और छोटे जन्तुओं से होकर बड़े जंतुओं की ओर जाती है।

(ii) परजीवी शृंखला (The parasitic chain)—यह बड़े जन्तुओं से छोटे जन्तुओं की ओर जाती है।

(iii) मृतोपजीवी शृंखला (The saprophytic chain) यह मृत प्राणियों से सूक्ष्म जीवों की ओर जाती है।

4. खाद्य जाल (Food web)

प्रकृति में भोजन शृंखला का क्रम सदैव रेखिक (linear) नहीं होता है। अनेक

चित्र 3.7 खाद्य श्रृंखला तथा खाद्य जाल
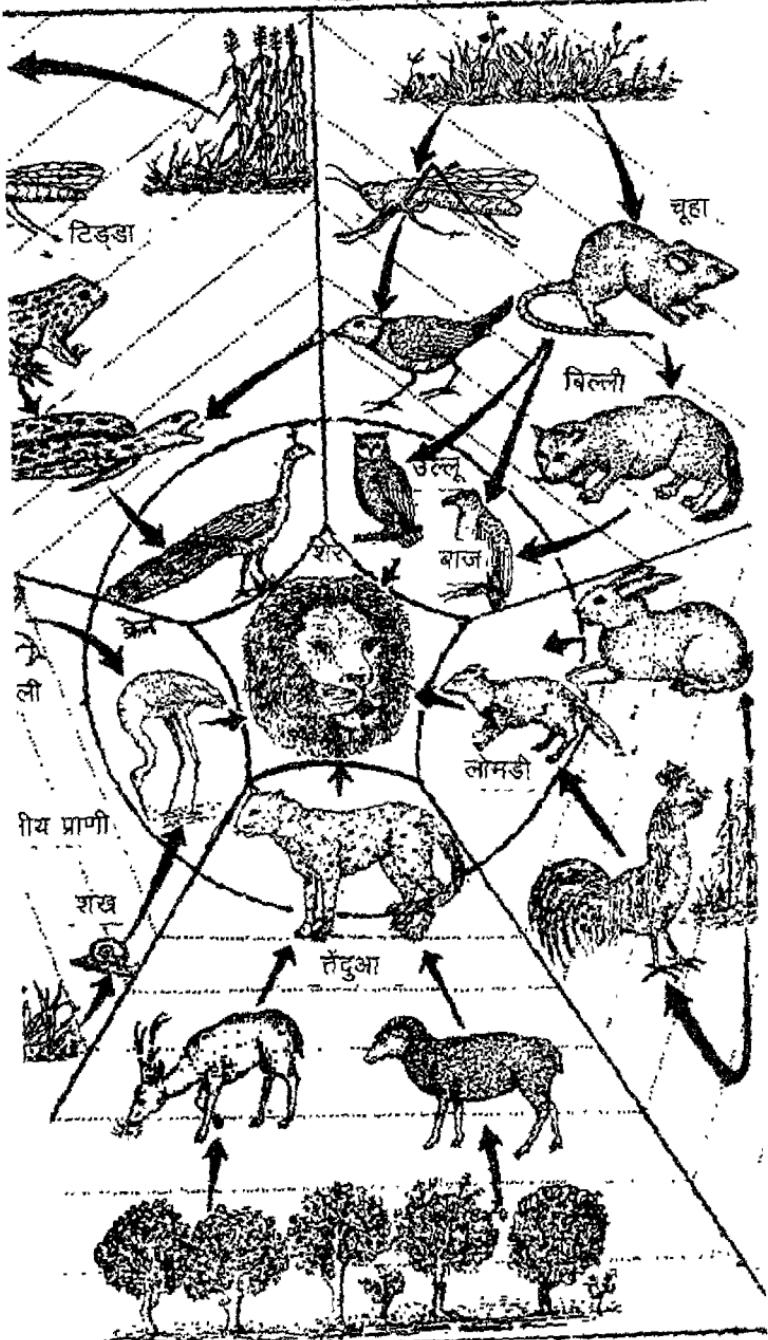
क दूसरे के साथ परस्पर सम्बन्ध दिखाती हैं और अतग्रथित (interlocked) कार अनेक शृंखलाओं के एक समय जुड़े रहकर काम करने के कारण d web) बन जाता है। उदाहरणार्थ किसी खाद्य शृंखला में उत्पादकों को । पर चूहे भी खा सकते हैं इसी प्रकार चूहों को साँप तथा साँप को बाज थवा चूहों को सीधे ही बाज भी खा सकते हैं। इस प्रकार सभी जीव एक ी भाँति जुड़े रहते हैं। किसी पारिस्थितिक तंत्र की **स्थिरता** (stability) **न** (balance) बनाए रखने में भोजन जालों का अपना अलग ही महत्त्व में जितने **अधिक वैकल्पिक रास्ते** होंगे, जीवधारियों का समुदाय उतना ही ने की सम्भावनाएँ बढ़ती जायेंगी।

पिरैमिड (Ecological Pyramids)

ी पारिस्थितिक तंत्र में विद्यमान विविध पारस्परिक सम्बन्धों को आलेखों क्या जा सकता है। इन आलेखों को पारिस्थितिक पिरामिड (ecological हते हैं। ये तीन प्रकार के होते हैं।

ख्याओं का पिरामिड (Pyramid of numbers)

र्जा का पिरामिड (Pyramid of energy)

ायोमास का पिरामिड (Pyramid of biomass)

ख्याओं का पिरामिड (Pyramid of numbers)—इसमें विभिन्न पोषी ाने वाले जीवों की अर्थात् उत्पादकों, शाकाहारियों तथा माँसाहारियों इत्यादि क्षेत्रफल में पाई जाने वाली आपेक्षिक संख्याओं को प्रदर्शित किया जाता
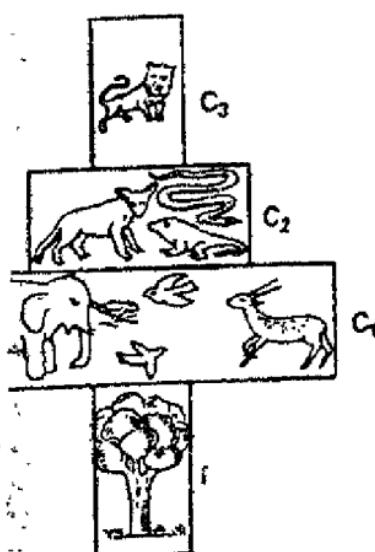
वन परिस्थितिक तंत्र—संख्या के पिरामिड

घास स्थल (grassland) **पारिस्थितिक तंत्र** में संख्या के पिरामिड **सीधे** (upright) होते हैं। घास स्थल में मुख्य उत्पादक घास है जिनकी संख्या किसी भी स्तर में पाए जाने वाले उपभोक्ताओं से अधिक होती है। प्राथमिक उपभोक्ता जैसे खरगोश-चूहे इत्यादि की संख्या घास से कम होती है इस प्रकार द्वितीयक उपभोक्ता जैसे साँप छिपकलियाँ इत्यादि की संख्या और कम तथा तृतीयक

उपभोक्ता जैसे बाज इत्यादि की सख्या सबसे कम होती है। इस प्रकार प्रत्येक स्तर की सख्या नीचे से शिखर की ओर-उत्तरोत्तर कम होती जाती है और **सीधा** (upright) पिरामिड बनता है। (चित्र)।

इसी प्रकार **ताल पारिस्थितिक तंत्र** (Pond ecosystem) में पादप प्लवक (उत्पादक)→छोटी मछलियाँ, रॉटिफर इत्यादि (प्राथमिक उपभोक्ता)→जल भृंग, बड़ी मछलियॉ (द्वितीयक उपभोक्ता)→सबसे बड़ी मछलियाँ (तृतीयक उपभोक्ता) की संख्या में **क्रमश** कमी होती जाती है तथा सीधा (upright) पिरामिड़ बनता है।

चित्र 3.9 संख्या के पिरैमिड
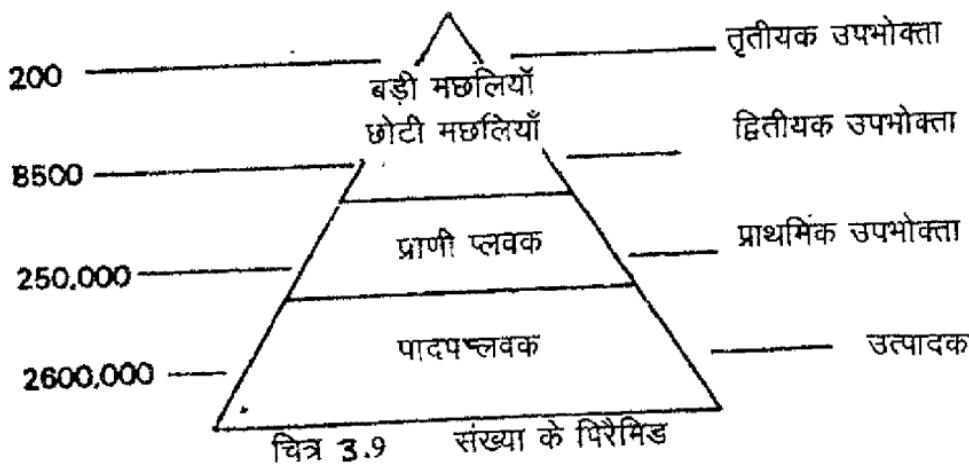
वन पारिस्थितिक तंत्र (Forest ecosystem) में इस पिरामिड का आकार विभिन्न होता है। उत्पादक मुख्यतः बड़े आकार के वृक्ष होते हैं जो संख्या में कम होते हैं। प्राथमिक उपभोक्ता जैसे पक्षी, हाथी, हिरन इत्यादि की संख्या अपेक्षाकृत अधिक होती है। इसके द्वितीयक व तृतीयक उपभोक्ताओं में संख्या उत्तरोत्तर कम होती जाती है।

वन में वृक्षों पर **परजीवी खाद्य शृंखला** (parasitic food chain) पायी जाती है। उत्पादक केवल एक बड़ा वृक्ष होता है। प्राथमिक उपभोक्ता, फलों पर निर्भर शाकाहारी पक्षी होते हैं जिनकी संख्या उत्पादकों से अधिक होती है। इन पक्षियों पर परजीवी पाए जाते हैं जो द्वितीयक उपभोक्ता हैं और इनकी संख्या प्राथमिक उपभाक्ताओं से अधिक होती है। तृतीयक उपभोक्ता परात्परजीवी (hyperparasites) होते हैं जो द्वितीयक उपभोक्ताओं पर निर्भर होते हैं, इनकी संख्या अत्यधिक होती है। इस प्रकार यह पिरामिड **उल्टा** अथवा **प्रतिलोमित** (invested) होता है।

(2). **ऊर्जा का पिरामिड** (Pyramid of energy)—खाद्य शृंखला के हर स्तर (प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं सर्वश्रेष्ठ श्रेणी) पर उपभोक्ता केवल 10% संचित ऊर्जा को अपने शरीर भार में रूपान्तरित करता है। अत: किसी भी पारिस्थितिक तंत्र के मूल उत्पादकों में अत्यधिक ऊर्जा मिलेगी और प्रथम श्रेणी के उपभोक्ता में उससे कम और सर्वश्रेष्ठ श्रेणी के उपभोक्ता में सबसे कम ऊर्जा प्रतिवर्ष प्रति किलोमीटर मिलेगी। इस कारण ऊर्जा

चित्र 3.10 ऊर्जा के पिरैमिड
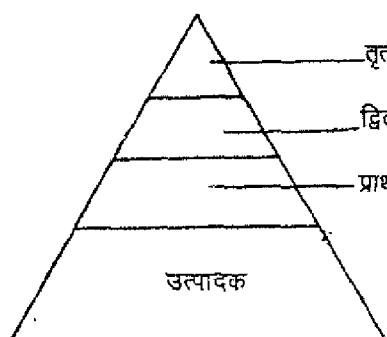
चित्र 3.11 (अ) जीव भार के पिरामिड़

का पिरामिड सदैव **सीधा** (upright) रहता है।

(3) **जीवभार का पिरामिड** (Pyramid of biomass) – एक पारिस्थितिक तंत्र में जीवित प्राणियों का प्रति इकाई क्षेत्र में सम्पूर्ण शुष्क भार उसका जीवभार (biomass) कहलाता है। **स्थलीय पारिस्थितिक तंत्र** (terrestrial ecosystêm) मूल उत्पादक का जीवभार खाद्य शृखला के हर स्तर के उपभोक्ता से अधिक होता है **सीधा** (upright) पिरामिड बनता है।
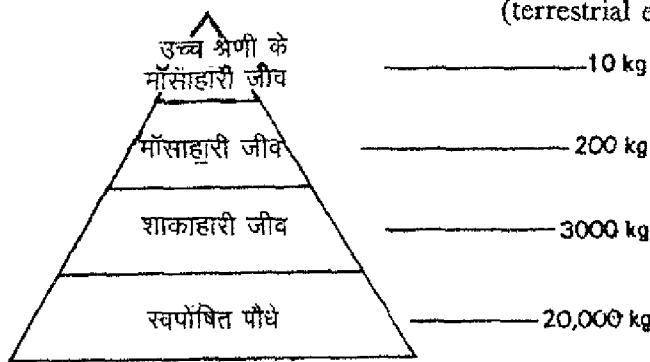
वन में किसी समय भी वृक्षों का जीव भार उस पर आश्रित प्राथमिक उपभाक्ताओं अधिक होता है। इसी प्राकर द्वितीयक व तृतीयक उपभोक्ताओं का जीवभार सबसे कम होता है। अतः इस क्रम से **सीधा** (upright) पिरामिड बनता है।
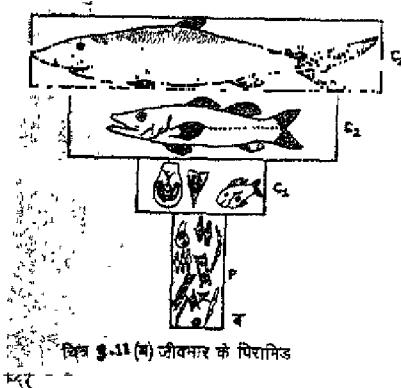
चित्र 3.11 (ब) जीवभार के पिरामिड

जलीय पारिस्थितिक तंत्र में मूल उत्पादक पादप प्लवक (phytoplankton) और डायटम (diatoms) का भार शाकाहारी मछलियों (प्राथमिक उपभोक्ता) से कम होता है। बड़ी मॉसाहारी मछलियाँ (द्वितीयक उपभोक्ता) का जीवभार सबसे अधिक होता है। इस कारण से यह पिरामिड **उल्टा**

(nvested) बनता है

विशिष्ट पारिस्थितिक तंत्रों का अध्ययन (Study of certain ecosystems)

लगभग सभी पारिस्थितक तंगों की सामान्य संरचना एवं कार्य एक जैसे होते है। परन्तु प्रत्येक तंत्र में उत्पादक, उपभोक्ता, उत्पादक दर इत्यादि लक्षण विभिन्न होते हैं।

1. अलवण जलीय ताल पारिस्थतिक तंत्र (Fresh water pond ecosystem)

तालाब का पारिस्थितिक तंत्र एक पूर्व एवं स्वतः नियामक पारिस्थितिक तंत्र है। इसमें निम्नांकित घटक होते हैं—

1. अजीवीय पदार्थ एवं ऊर्जा (Abiotic materials and energy)–ऊर्जा का स्रोत यहाँ भी सूर्य ही होता है। खनिज पदार्थ तथा विभिन्न गैसें जैसे CO_2,O_2 आदि तालाब के जल में विलयन के रूप मे होती हैं। कुछ अजीवीय पदार्थ जल के धरातल पर मिलते हैं।

2. जीवीय घटक (Biotic companents)

(i) **उत्पादक** (Producers)–विभिन्न प्रकार के शैवाल (algae) तथा अनेक तैरने वाले (floating) तथा डूबे हुए (submerged) पौधे जीवीय घटक होते हैं जो सूर्य से प्राप्त ऊर्जा को ग्रहण कर प्रकाश **संश्लेषण** (Photosynthesis) द्वारा खाद्य पदार्थों का सश्लेषण कर उन्हें संचित करते हैं।

(ii) **प्रथम श्रेणी के उपभोक्ता** (Consumers of the first order)–जल में पाये जाने वाले छोटे-छोटे कीट-**कोपीपोड** (copepods), कुछ **एनीलिड्स** (Annelids) तथा **मौलसक्स** (molluses) इस श्रेणी में आते हैं। ये शैवालों, पत्तियों इत्यादि को भोजन के रूप में लेते हैं।

(iii) द्वितीय श्रेणी के उपभोक्ता (Consumers of the second order)–ये शिकाहारी कीट है जो शाकाहारी (herbivorey) उपभोक्ताओं का शिकार करते हैं जैसे भृग (beetles)।

(iv) तृतीय श्रेणी के उपभोक्ता (Consumers of the third order)–ये विभिन्न प्रकार की माँसाहारी मछलियाँ हैं जो अन्य उपभोक्ताओं को अपना भोजन बनाती है। ये ही उच्चतम उपभोक्ता (top consumers) भी हैं।

(v) **अपघटक** (Decomposers)–जीवों के मरने पर उनके मृत शरीरों को अपघटित (decompose) करके उनके **अवयवों** को जल में वापस करने का कार्य कुछ जीवाणु तथा अन्य सूक्ष्म जीव (micro organisms) करते हैं। ये अपघटक (decomposers) है।

इस प्रकार जटिल कार्बनिक पदार्थ फिर से कार्बन नाइट्रोजन, फॉस्फोरस आदि खनिज तत्त्वों में परिवर्तित हो जाते हैं और जल में मिल जाते हैं। ये जल में फिर से खनिज प्रवाह बनाते हैं।

वन पारिस्थितिक तंत्र (Forest ecosystem)

(i) अजीवीय घटक (Abiotic components)

विभिन्न प्रकार के अजीवीय घटक वायुण्डल तथा मृदा में मिलते हैं। वायुमण्डल

(Lesbivores) जीव जैसे खरगोश, बन्दर, लंगूर, हिरन, चूहे, गिलहरी, कीड़े-मकोड़े, गाय घोडे हाथी आदि होते हैं।

(iii) द्वितीय श्रेणी के उपभोक्ता (Consumers of the second order) – लकड़बग्घे, भेड़िये, तेंदुये, बिल्लियाँ, साँप आदि जन्तु तथा बाज, चील, गिद्ध इत्यादि पक्षी होते हैं।

(iv) तृतीय श्रेणी के उपभोक्ता या उच्चतम उपभोक्ता (Tertiary consumers or top consumers) – ये संख्या में बहुत कम होते हैं जैसे शेर, चीता, गिद्ध अजगर तथा अन्य सर्प इत्यादि।

जीवमण्डल
(Biosphere)

जीवंमण्डल पृथ्वी का वह भाग है, जिसमें जीवधारी रहते हैं। यह महासागरों के धरातल से लेकर पर्वतों के उच्च शिखरों तक 22.5 किमी. की ऊँचाई तक फैला हुआ है। जीवमण्डल के सभी भागों में जीवधारी समान रूप से नहीं मिलते। एक तरफ उष्ण कटिबंधी वनों (tropical rain forest) में जीवधारियों की संख्या अधिकतम होती है तो दूसरी तरफ टुण्ड्रा प्रदेश, बर्फ से ढकी चोटियों, मरुस्थल, महासागरों के धरातल इत्यादि पर नहीं के बराबर जीवधारी मिलते हैं।

जीवमण्डल को तीन भागों में विभाजित किया गया है।

1. स्थल मण्डल (Lithosphere) – इस वातावरण में चट्टानें, रेत इत्यादि हैं। इस भाग में पौधे अपने जीवन के लिए आवश्यक खनिज पदार्थ प्राप्त कर सकते हैं।

2. जलमण्डल (Hydrosphere) – इस वातावरण में स्थल मण्डल पर उपस्थित जल है। पृत्वी की सतह का लगभग 70% भाग पर जलमण्डल उपस्थित है। नदी, झील, तालाब, समुद्र इत्यादि मिलकर इस भाग को बनाते हैं। सभी जीवधारियों के जीवन के लिए जल आवश्यक है।

3. वायुमण्डल (Atmosphere) – स्थल और जलमण्डल के ऊपर 300 कि मी तक वायुमण्डल फैला है। वायुमण्डल में बहुत सी गैसें जैसे नाइट्रोजन (78.03%), ऑक्सीजन (20.99%), आर्गन (0.94%), कार्बन डाई ऑक्साइड़ (0.03%), दूसरी अनेक गैसें, वाष्प, धूल के कण इत्यादि होते हैं।

जीवमण्डल (Biosphere) एक विशाल पारिस्थितिक तंत्र (ecosystem) है। एक साथ इसका अध्ययन करना एक दुष्कर कार्य है अतः सुविधा की दृष्टि से इसे छोटे-छोटे पारिस्थितिक तंत्रों जैसे स्थलीय पारिस्थितक तंत्र, जलीय पारिस्थितिक तंत्र इत्यादि मे विभाजित किया गया है जिनका अध्ययन हम पहले कर चुके हैं।

पारिस्थितिकी असंतुलन
(Ecological imbalance)

पारिस्थितिकी तंत्र (ecosystem) के ठीक प्रकार से कार्य करने के लिए यह आवश्यक है कि जैविक (biotic) तथा अजैविक (abiotic) घटक (components) लगभग एक

निश्चित मात्रा एवं **अनुपात** में उपस्थित रहें। किसी भी एक घटक अथवा उसके किसी एक अश के अभाव में पारिस्थितिकी तंत्र असंतुलित हो जाता है जिसे **पारिस्थतिकी असंतुलन** (Ecological imbalance) कहते हैं।

पारिस्थितिकी तंत्र (ecosystem) में ऊर्जा का स्रोत सूर्य होता है। उचित मात्रा में ऊर्जा की आपूर्ति ना हो पाने पर तंत्र की उत्पादकता दर पर प्रभाव पड़ता है। ऊर्जा उपभोक्ता व अपघटक वर्ग के जीवों को खाद्य के रूप में प्राप्त होती है जिससे अनेक जैविक क्रियाओं का संचालन होता है। जैविक क्रियाओं के संचालन में ऊर्जा पुनः रुपान्तरित होती है और ताप के रूप में परिणत होकर वातावरण में विसरित हो जाती है।

खनिज प्रवाह द्वारा विभिन्न खनिज एवं गैसें वातावरण को पुनः उपलब्ध होती रहती हैं। पारिस्थतिक तंत्र के जैविक घटकों (biotic components) को विभिन्न श्रेणियों में रखा जा सकता है जैसे उत्पादक, उपभोक्ता, अपघटक इत्यादि। ये घटक एक दूसरे पर निर्भर रहते है तथा खाद्य शृंखलाएँ आपस में जुड़ कर **खाद्य जाल** (food chain) बनाती हैं। किसी भी पारिस्थितिक तंत्र में खाद्य जाल जितना जटिल और विशाल होता है उतना ही तंत्र अधिक स्थायी (stable) होता है। जटिल खाद्य जाल में किसी भी उपभोक्ता के लिए अधिक तरह के जीव (खाद्य ऊर्जा) उपभोग के लिए होगें। अतः एक जीव के किसी कारण से कम हो जाने या नष्ट हो जाने से भी तंत्र की स्थिरता पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि उस स्थान की पूर्ति उसी स्तर का कोई दूसरा जीव कर देगा। उदाहरण के लिए घास स्थलीय पारिस्थितिक तत्र (grassland ecosystem) में खरगोशों की संख्या कम हो जाती है तो खरगोशो के कम होने से घास अधिक बची रहती है व चूहों के बढ़ने में मदद करती है। इस समय बाज खरगोशों के स्थान पर चूहे खाने लगते हैं और बचे हुए खरगोश अपनी संख्या पुनः बढाने लगते हैं। इसी प्रकार खरगोशों की संख्या अधिक होने लगती है तो उपभोक्ता अधिक संख्या में उत्पन्न होकर तंत्र की अस्थिरता को कम कर सकते हैं। पारिस्थितिक तंत्र का संतुलन इसलिए भी बना रहता है कि किसी भी स्तर के जीवों की संख्या अत्यधिक होने पर वे स्वय ही नष्ट होने लगते हैं। दूसरी ओर जीवों का एक दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। अधिक संख्या में वैकल्पिक पथ (alternative path ways) होने पर पारिस्थितिक तंत्र (ecosystem) अधिक स्थिर और संतुलित (stable and balanced) बनता है।

अध्ययन बिन्दु

1. **पारिस्थितिक तंत्र** ऐसा कार्यरत तंत्र होता है जिसमें जैविक व अजैविक पदार्थों के बीच प्रतिक्रिया होती रहती है।
2. प्रकृति में मिलने वाले पारिस्थितिक तंत्र **प्राकृतिक** व मनुष्य द्वारा निर्मित पारिस्थितिक तंत्र **कृत्रिम** अथवा **मानव निर्मित** कहलाते हैं।
3. सबसे बड़ा पारिस्थितिक तंत्र **जीव मण्डल** है।
4. पारिस्थितिक तंत्र **जैविक** व अजैविक घटकों से मिलकर बनता है।

5. पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा का प्रवाह होता रहता है। यह एक दिशीय होता है तथा उत्पादक से क्रमश : उपभोक्ता व अपघटक की तरफ होता है।
6. प्रकृति में विभिन्न प्रकार के खनिज व गैसों का प्रवाह होता रहता है जिसे **खनिज प्रवाह** व **गैस प्रवाह** कहते हैं।
7. विभिन्न जीवधारियों द्वारा खाने व खाए जाने के क्रम को **खाद्य शृंखला** कहते हैं।
8. खाद्य शृंखलाएँ अन्तर्ग्रथित होकर **खाद्य जाल** बनाती हैं।
9. किसी भी पारिस्थिति तंत्र में विद्यमान पारस्परिक सम्बन्धों को संख्या, ऊर्जा या बायोमास के पिरामिड़ आलेखों द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।
10. पारिस्थितिक तंत्र के किसी भी घटक अथवा उसके अंश के प्रभाव में पारिस्थितिक तंत्र असंतुलित हो जाता है जिसे **पारिस्थितिकी असंतुलन** कहते हैं।

अध्याय-4

प्राकृतिक संसाधन एवं उनका संरक्षण

(Natural resources and their conservation)

मानव अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सदैव ही प्रकृति पर निर्भर करता रहा है। आर्थिक विकास के आरंभिक दौर में खाने योग्य पौधे एवं जन्तु उसकी आवश्यकता थे। धीरे-धीरे अपनी आवश्यकतानुसार उसने प्राकृतिक साधनों को अधिक से अधिक उपयोग में लाने योग्य बनाने के लिए प्रौद्योगिकी का विकास किया। भूमि, सूर्य का प्रकाश, हवा, वन, वन जीवन इत्यादि साधन मनुष्य के जन्म से पहले ही पृथ्वी पर उपलब्ध थे। समय के साथ उसने इन प्राकृतिक साधनों का उपयोग करना सीखा व इन्हें संसाधनों के रूप में विकसित किया। **वे प्राकृतिक साधन जिन्हें प्रौद्योगिकी की सहायता से उपयोग में लेने योग्य बनाया जा सके प्राकृतिक संसाधन कहलाते हैं।**

प्राकृतिक संसाधन **दो प्रकार** के होते हैं—

1. नवीकरणीय 2. अनवीकरणीय

1. नवीकरणीय संसाधन (Renewable resources) – ये वे संसाधन है जो सदैव प्रकृति में उपलब्ध रहते हैं। दोहन (exploitation) के साथ-साथ ही प्रकृति में इनका पुनर्स्थापन होता रहता है। उदाहरण वायु, जल, सूर्य का प्रकाश, मृदा, जीव इत्यादि। सबसे अधिक उपयोग में आने वाला संसाधन वायु है। वायु में मुख्य रूप से 78% नाइट्रोजन, 21% ऑक्सीजन व 0.03% कार्बन डाइ ऑक्साइड होती है। इन गैसों को जीवधारी काम में लेते हैं व गैस प्रवाह के द्वारा पुनः ये वातावरण में मिल जाती हैं। गैस प्रवाह का विस्तृत विवरण अलग अध्याय में दिया गया है।

जल जीवन का आधार है। मनुष्य के लिए यह उतना ही आवश्यक है जितनी कि वायु। पृथ्वी पर उपलब्ध 97% जल समुद्रों में मिलता है तथा 3% ताजा जल होता है। जल चक्र (water cycle or hydrologic cycle) के द्वारा यह पुनः उपलब्ध होता रहता है।

इसी प्रकार से नए-नए पौधों के उगने व जीवों के उत्पन्न होते रहने से ये भी वातावरण में उपलब्ध रहते हैं।

2. अनवीकरणीय संसाधन (Non-renewable resources) – ऐसे संसाधन जिनका प्रकृति में **पुनर्स्थापन संभव नहीं होता** अनवीकरणीय संसाधन कहलाते है। उदाहरण—धातुएँ, कोयला, खनिज तेल इत्यादि। इन संसाधनों के निर्माण में कई हजार वर्ष लगते हैं तथा असीमित मात्रा में प्रयोग करने से प्रकृति में इनकी उपलब्धता कम होती जाती है। भूगर्भ

वैज्ञानिकों की गणना के अनुसार प्रकृति में उपलब्ध कोयले का भण्डार मात्र 300-400 वर्षों तक के लिए पर्याप्त है। पैट्रोल तथा प्राकृतिक गैस का भंडार तो और भी कम है।

संरक्षण (Conservation) – बढ़ती हुई जनसंख्या की खाद्यपूर्ति एवं आवास के लिए वनों को काटा गया। इसी प्रकार अन्य संसाधन जैसे कि मृदा, जलाशय इत्यादि के उपयोग की दर अधिक रहने व नवीकरण की दर कम रहने के कारण अनेक संसाधन पृथ्वी के अनेक भागों से विलुप्त होते गए। इसके परिणामस्वरूप वातावरण में असंतुलन आता गया संसाधनों के उपयोग करने का अर्थ इनको नष्ट करना नहीं है। संरक्षण के द्वारा इनको अधिक उपयोगी व स्थायी बनाया जा सकता है। **प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग व इस प्रकार के प्रबंध को जिसमें संसाधन का प्राकृतिक संतुलन बना रहे व मानव की आवश्यकता पूर्ति भी होती रहे संरक्षण कहते हैं।** संरक्षण इस प्रकार किया जाता है कि भावी पीढ़ियाँ भी संसाधनों का उपयोग कर सकें।

संरक्षण के द्वारा पर्यावरण के उत्पाद उपयोग व पुर्नस्थापन के मध्य ऐसा संतुलन स्थापित किया जाता है ताकि निरंतर उपयोगी पौधे, जन्तु व पदार्थ प्राप्त हो सकें।

जल प्रबंध
(Water Management)

जल एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संसाधन है। पीने के अतिरिक्त जल मुख्य रूप से कृषि, विद्युत निर्माण, घरों में व उद्योगों में काम लिया जाता है। स्थलीय जल का मुख्य स्रोत वर्षा है और यह नदियों (rivers), तालाब (ponds), मृदा जल (soil water), भौम जल (ground water) इत्यादि के रूप में पाया जाता है। भारत में वर्षा मानसून (monsoon) के समय होती है जो कि मात्र 3-4 महीने के लिए आता है। वर्षा से प्राप्त 45% जल नदियों, तालाबों इत्यादि में जाता है, 20% जल मिट्टी में रिस कर भौम जल के रूप में रहता है तथा अतिरिक्त 35% जल वाष्पित (evaporate) हो जाता है। हमारे देश में वर्षा का अनुपात अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग रहता है इस कारण से कुछ क्षेत्रों में बाढ़ व कुछ क्षेत्रों में सूखे की स्थिति भी हो जाती है। भौम जल संसाधन (ground water resources) से उत्तरी व समुद्र तटीय इलाकों में पानी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध रहता है। परन्तु शेष भागों में भौम जल कम मात्रा में रहता है तथा मानसून के 3-4 महीनों के अतिरिक्त पूरे वर्ष भर जल का अभाव बना रहता है। मानसून के समय में सर्वाधिक वर्षा वाले क्षेत्रों जैसे—चेरापूँजी व कोंकण को भी ग्रीष्म ऋतु के समय में जलाभाव का सामना करना पड़ता है।

जल का मुख्य उपयोग सिंचाई (79.6%), बिजली निर्माण (13.7%), घरों में (3.5%) व उद्योगों में (3.3%) होता है।

हमारे देश में 14 बड़ी नदियाँ हैं जिनके द्वारा जल की आपूर्ति की जाती है ये हैं ब्राह्मणी, ब्रह्मपुत्र, कावेरी, गंगा, गोदावरी, इंडस, कृष्णा, महानदी, माही, नर्मदा, पैरियार, साबरमती, सुवर्ण रेखा तथा तापी। इसके अतिरिक्त 44 मध्यम व 55 छोटी नदियाँ भी हैं।

तेज बहाव वाले जल को रोकने और उसे आवश्यकतानुसार काम में लाने के लिए बाँध (dams) निर्मित किये जाते हैं। इस जल को नालों, नहरों आदि के द्वारा गन्तव्य स्थान तक ले जाया जाता है। देश में इस प्रकार की कई महत्त्वपूर्ण योजनायें कार्यान्वित हो चुकी हैं। भाखड़ा-नॉगल, कोसी, दामोदर, हीराकुंड, चंबल आदि स्थानों पर बड़े-बडे बाँधों का निर्माण किया गया है।

हमारे देश के 3000 में से 2000 कस्बों में ही नियमित जलापूर्ति हो पाती है। सभी गाँवों में सुरक्षित पेय जल व अन्य जल की आपूर्ति हो सके तथा काम में लेने के पश्चात् गंदे हुए जल (व्यर्थ जल) को विभिन्न साधनों के द्वारा साफ करके पुनः काम में लिया जा सके इसके लिए विभिन्न केन्द्रीय व राज्य स्तर के संगठन सक्रिय रूप से कार्य कर रहे हैं। जल प्रबंध में लगे कुछ संगठन निम्न हैं—

1. Central Water Commision—Surface Water
2. Central Ground Water Board—Ground Water
3. Indian Meteorological Department—Precipitation
4. Central Pollutioin Control Board—Water quality
5. Ministry of Agriculture and ICAR—Water use for agriculture
6. Department of Environment, forests and wild life (Ministry of Environment and Forests)—Environmental Impact Assesment.
7. Central Public Health and Environmental Engineering (Ministry of Urban Development)—Water supplies sanitation and sewage dispasol.

जल प्रबनध के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर कुछ योजनाएँ (Projects) बनाई गई हैं। इनमें से मुख्य प्रोजेक्ट निम्न हैं—

गंडक प्रोजेक्ट (बिहार); कोसी प्रोजेक्ट (बिहार); कक्करपारा प्रोजेक्ट (गुजरात); तावा मल्टीपरपज प्रोजेक्ट (मध्य प्रदेश); भादरा रिजरवोयर प्रोजेक्ट (मैसूर); अपर कृष्णा प्रोजेक्ट (मैसूर); मालप्रभा प्रोजेक्ट (मैसूर); नागर जूनासागर प्रोजेक्ट (आन्ध्र प्रदेश); तुंगभद्रा प्रोजेक्ट (आन्ध्र प्रदेश व मैसूर); हीराकुण्ड डेम प्रोजेक्ट (उड़ीसा); भाखड़ा नाँगल प्रोजेक्ट (पंजाव, हरियाणा व राजस्थान); बीस प्रोजेक्ट (पंजाब, हरियाणा व राजस्थान); राजस्थान कैनाल प्रोजेक्ट (राजस्थान); चम्बल प्रोजेक्ट (मध्य प्रदेश व राजस्थान); रामगंगा रिवर प्रोजेक्ट (उत्तर प्रदेश); मयूराकाशी प्रोजेक्ट (पश्चिमी बंगाल); गंगा बैरेज प्रोजेक्ट (पश्चिमी बंगाल); दामोदार वैली प्रोजेक्ट (पश्चिमी बंगाल व बिहार)।

भूमि प्रबन्ध (Land management)

उपजाऊ भूमि (productive land) राष्ट्र की महत्त्वपूर्ण सम्पदा है और इसे उत्पादन योग्य बनाए रखना राष्ट्र की आर्थिक तथा सामाजिक प्रणालियों के लिए अत्यावश्यक होता है। भूमि को उपजाऊ बनाए रखने के लिए मृदा (soil) का संरक्षण किया जाता है, जिसके लिए विभिन्न उपाय काम में लिए जाते हैं। इसे भूमि प्रबन्ध (land management)

कहते हैं। हमारे देश में खेती योग्य भूमि के लगभग 46% भाग में ही खेती की जाती है। शेष भाग में मृदा के जन्मजात गुणों के कारण, जलाभाव के कारण या मानव के अनुचित हस्तक्षेप के कारण खेती नहीं हो पाती है।

मृदा अपरदन (Soil erosion)

मृदा (soil) जैविक व अजैविक पदार्थों का जटिल मिश्रण है। पौधों के लिए यह स्थिरता (anchorage) तथा निर्वाह (sustenance) का माध्यम होता है। पौधों को बार-बार उगाने से मृदा की उर्वरता (fertility) कम हो जाती है। अनेक प्राकृतिक कारक जैसे जल, वायु इत्यादि उपरिमृदा (topsoil) को स्थानांनारित करके मृदा की उर्वरता को नष्ट कर देते हैं, इसे मृदा अपरदन (*soil erosion*) कहते हैं। यह इतना हानिकारक होता है कि रामाराव (Rama Rao) ने इसे मृदा की मृत्यु माना है। ओडम (odum) ने इसे एक प्रकार का मृदा प्रदूषण माना है।

मृदा अपरदन के प्रकार (Types of soil *erosion*)

यह दो प्रकार का होता है—

(i) **सामान्य अथवा भूवैज्ञानिक** (Normal or geologic)—यह सामान्य तथा प्राकृतिक स्थितियों में होता है। इस समय मृदा बनने की गति तथा मृदा अपरदन की गति बराबर होती है। इससे भूमि की उर्वरता पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता।

(ii) **त्वरित मृदा अपरदन** (Accelerated soil erosion)—इस प्रकार के अपरदन में मृदा के बनने की गति की अपेक्षा स्थानांन्तरण की गति अधिक तीव्र होती है। इससे भूमि की उर्वरता नष्ट हो जाती है।

मृदा अपरदन के मुख्य कारक (Major soil erosion agents)

कारकों के अनुसार होने वाले अपरदन के प्रकार निम्नलिखित हैं—

1. जल अपरदन (Water *erosion*)
2. वातीय अपरदन (Wind erosion)
3. भूस्खलन (Land slides)
4. सरिता—तीर अपरदन (Stream *bank erosion*)
5. अतिचारण और वनोन्मूलन (Overgrazing and deforestatrion)

1. जल अपरदन (Water erosion)

पानी का प्रवाह तथा वर्षा की बूँदे मृदा को हटाकर दूसरे स्थान पर ले जाती हैं। यह निम्न प्रकार का होता है।

(*i*)**परत अपरदन** (Sheet erosion)—इसमें जल मृदा का लगभग एक समान (uniform) स्तर हटाता है।

(ii) **रिल अपरदन** (Rill erosion)—पानी के लगातार प्रवाह के कारण सतह में जाल के रूप में खाँचे (*groove*) बन जाते हैं।

(iii) **अवनालियाँ अपरदन** (Gully erosion)—रिल अपरदन अविरत होने के परिणामस्वरूप खाँचे चौड़ी तथा गहरी नालियाँ बन जाती हैं।

2. वातीय अपरदन (Wind erosion) – शुष्क प्रदेशों में यह प्रकार सामान्य है। हमारे देश की लगभग 50 लाख हैक्टेयर भूमि जिसमें राजस्थान का भी अधिकांश भाग आ जाता है—वायु अपरदन से प्रभावित है। इसमें अधिवेगी पवन (high velocity wind) मृदा के कणों को उड़ाकर दूसरे स्थान पर ले जाती है। यह तीन प्रकार से होता है।

(i) **निलम्बन** (Suspension) – मृदा के सूक्ष्म कण महीन धूल के रूप में वातावरण में पवन द्वारा उड़ा दिए जाते हैं।

(ii) **उत्परिवर्तन (Saltation)** – मृदा के मध्यम आकार और वजन के कण, पवन के कारण टकराते हैं और उछलते हुए स्थानांतरित होते हैं।

(iii) **पृष्ठीय सर्पण** (Surface creep) – मृदा के भारी कण पवन की गति के कारण केवल धकेले जाते हैं और सतह पर खिसकते जाते हैं।

3. भूस्खलन (Lardslides) – अत्यधिक वर्षा के कारण पहाड़ों के कुछ भारी हो जाते हैं। यह गुरुत्वाकर्षण के कारण नीचे लुढक जाते हैं अथवा गिर जाते हैं (चित्र)।

4. सरिता-तीर-अपरदन (Stream bank erosion) – बाढ़ के समय नदियों का पानी किनारों से तेज गति से टकराता है। इसके फलस्वरूप नदी का प्रवाह सामान्य दिशा के अतिरिक्त अन्य दिशाओं में भी होने लगता है।

5. अतिचारण और वनोन्मूलन (Overgrazing and deforestation) – अतिचारण के कारण ऊपरी मृदा हट जाती है और भूमि की उर्वरता कम हो जाती है। राजस्थान में मरुस्थल बनने का मुख्य कारण अतिचारण बताया जाता है। इसी प्रकार पहाड़ों में जलग्रहण क्षेत्रों (catchment areas) के पेड़ों को काटने से, मैदानी क्षेत्रों में बाढ़ (floods) अधिक गम्भीर रूप धारण करती है।

मृदा संरक्षण (Soil conservation)

मृदा की हानि रोकने के लिए निम्नलिखित कुछ सिद्धान्त ध्यान में रखे जाते हैं। (i) वर्षा की बूँदों से मृदा को बचाना (ii) जल को एकत्रित होने से और ढलान से बहने वाले जल को रोकना (iii) मृदा को जल की अधिक मात्रा उपलब्ध करना (iv) पवन की गति को पृथ्वी की सतह पर कम करना (v) मृदा के कणों को स्थानान्तरण से रोकना इत्यादि।

भूमि संरक्षण की विधियाँ (Methods of soil conser-vation)

ये दो प्रकार की होती हैं—

1. जैविक (Biological)
2. यान्त्रिक (Mechanical)

1. जैविक विधियाँ (Biological Methods)

इनके अन्तर्गत पौधों का उपयोग किया जाता है। इन्हें चार वर्णों में रखा जा सकता है—

(i) **शस्य विज्ञानिय (Agronomic)**
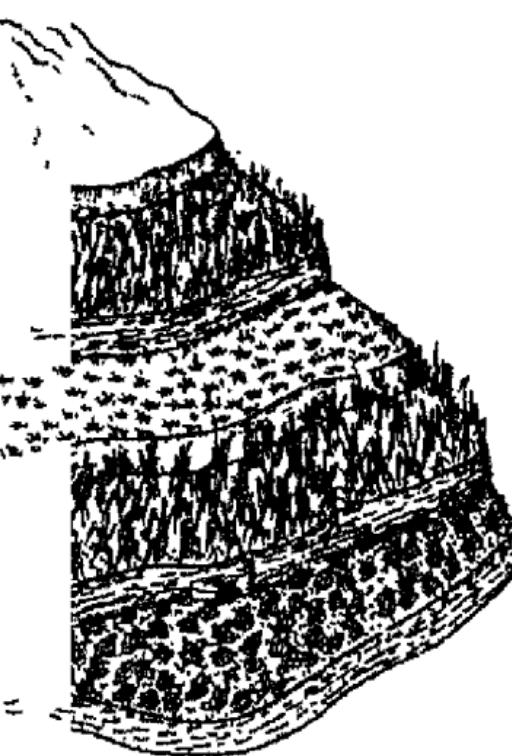
त्र 4.1 कण्टूर कृषि

(ii) घास विज्ञानिय (Agrostologic)

(iii) वर्षाधीन खेती (Dry farming)

(iv) वनारोपण (Afforestation)

(i) **शस्य विज्ञानिय विधियाँ** (Agronomic methods) — इनमें विभिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ उगाकर मृदा की हानि रोकी जाती है। ये चार प्रकार की हैं।

अ. **समोच्चरेखीय खेती** (Contour farming) — खेतों में क्रमश खाँचे (furrows) और कटक ाते हैं। वर्षा का जल खाँचों में एकत्रित हो जाता है।

नाना (Mulching) — यह विधि वायु व जल अपरदनों को कम करनी ो कि दालों, मक्का, आलू, तम्बाकू के पौधों के आधार भाग को फसल ५ रूप में छोड़ दिया जाता है। फसली पौधों को इस ठूंठों के एकान्तर ता है। ठूंढ पत्तियाँ, मृदा नमी के वाष्पन को रोकती हैं और कार्बनिक ो हैं जिससे मृदा में नमी का अनुपात व उर्वरता बढ़ती है।

न (Crop rotation) — प्रत्येक वर्ष एक जैसी फसल उगाने से भूमि ी होती जाती है। प्रत्येक ऋतु में फसल को बदलने से भूमि की उर्वरता यत प्रमुख फसल के साथ दूसरे ऋतु में लेग्यूमिनस (फलीदार) पौधों । इन पौधों की जड़ों में **राइजोबियम** (Rhizboium) जीवाणु युक्त) होती हैं। ये जीवाणु वायुमण्डल की नाइट्रोजन का यौगिकीकरण से नाइट्रेट में बदल देते हैं जो पौधो को उपलब्ध हो जाता है।

खेती (Strip cropping) — यह तरीका कम ढलान वाले पर्वतीय ाता है। इसमें फसलों को चौड़ी पटिटकाओं के रूप में उगाते हैं तथा **पौधे** बहुवर्षी (perennial) पौधों के बीच लाइन में लगाए जाते हैं। का बहाव तेज नहीं होता और भूमि अपरदन भी कम होता है। पट्टिकाएँ की दिशा के 90° कोण पर बनायी जाती हैं।

विज्ञानिय विधियाँ (Agrostological methods) — इन विधियों में स उगायी जाती है। घास का सघन रेशेदार मूलतंत्र मृदा को संगठित

(bind) कर लेता है। कुछ घासें 90% तक अपरदन रोकने में समर्थ होती हैं उदाहरण **सायनोडॉन डेक्टीलॉन (Cyanodon dactylon)** व **सैकेरम बेंगालेन्सिस** (Saccharum bengalnsis)। घास उगाने से अपरदन को रोका जाना, जल के वाष्पन को कम करना तथा मृदा की संरचना को स्थिर रखना संभव है। यह विधियाँ दो प्रकार की होती हैं—

अ. ले खेती (Ley farming)—इसमें घासों को कृषि की फसलों के साथ विभिन्न ऋतुओं में एकान्तरित किया जाता है।

ब. भूमि पर घास उगाना (Retiring lands to grasses)—उन स्थानों पर जहाँ अपरदन के कारण उपरिमृदा नष्ट हो गई हो तो घास स्थायी वनस्पति (permanent Negetation) के रूप में उगायी जाती है।

(iii) वर्षाधीन खेती (Dry farming)—अत्यन्त कम एवं अनिश्चित वर्षा वाले क्षेत्रों में की जाती है। इन क्षेत्रों में कुछ ही फसलों का उत्पादन किया जा सकता है। इसमें अपरदन रोकने के लिए घास, चारा, रजका आदि उगाते हैं। इसके अलावा घास स्थलों पर निर्भर पशुओं का पालन किया जाता है।

(iv) वनारोपण (Afforestation)—वनारोपण, बाढ़ नियंत्रण तथा मृदा अपरदन को रोकने का प्रमुख उपाय है। अपने देश में नदियों में बाढ़ की समस्या बनी रहने का कारण, वनों के वृक्षों को बिना सोचे समझे अत्यधिक संख्या में काटना ही है। अत्यावश्यकता होने पर वृक्ष काटने के पश्चात् वहाँ फिर उसी प्रकार के वृक्ष लगाने चाहिए। इसी सिद्धान्त पर आधारित वनमहोत्सव 1950 में प्रारम्भ किया गया।

वन शुष्क क्षेत्रों में तथा मरुस्थलों में वातीय अपरदन को रोकने में उपयोगी होते हैं। वृक्षों को वातरोध (wind breaks) के रूप में, पवन प्रवाह की विपरीत दिशा में लगाया जाता है।

वातरोध वृक्षों के समूह या पट्टिका के रूप में वायु दिशा के समकोण पर लगाए जाते हैं। वायु दिशा की ओर छोटे आकार के और इसके बाद ऊँचे आकार के वृक्ष लगाए जाते हैं। भारत के मरुस्थल में वातरोध के लिए उपयोग में लाये जाने वाले कुछ मुख्य पौधे हैं—

लॉसोनिया ऐल्बा (Lawsomia alba), कैलोट्रोपिस जिजैन्टिना (Calotropis gigantina), ऐगेव अमेरिकाना (Agave americana), जिजिपस जुजुबा (Zizypas jujuba), सैकेरम मुंजा (Saccharum munja), लैप्टेडीनिया स्पार्टियम (Leptadaenia spartium), एकेशिया कैटेचू (Acacia catechu), डालबर्जिया सिस्सो (Dalbergia sisso), मैनजीफेरा इन्डिका (Mangifera indica) इत्यादि।

2. यान्त्रिक विधियाँ (Mechanical methods)—ये विधियाँ जैविक विधियों की पूरक होती हैं।

(i) बेसिन लिस्टिंग (Basin listing)—इसे पर्वतीय भागों में अपनाया जाता है। जल को रोकने के लिए समोच्च रेखाओं के साथ-साथ अवतली द्रोणियाँ (प्यालेनुमा गर्त) बना देते हैं जो जल को रोके रखती हैं और जल प्रवाह के वेग को कम करती हैं।

(ii) समोच्चरेखीय वेदिका (Contour terracing)—यह तरिका भी पर्वतीय भागों में जहाँ ढाल अधिक नहीं अपनाया जाता हैं। ढाल को छोटे, चपटे, समको खेतों में बाँट लिया जाता है। इन खेतों को वेदिका (terrace) कहते हैं। जहाँ वेदिका के अगले किनारे समाप्त होते हैं, उसके नीचे की दूसरी वेदिका बनाते हैं। वेदिका के किनारों पर भूमि को आवंटन के लिए घास व शेष भाग में फसली पौधे लगाते हैं।

(iii) अवनालिका नियन्त्रण (Gully control)—पानी के अत्यधिक तेज प्रवाह के नियंत्रण के लिए जलाशयों, बांध, अपवाहिकाओं तथा दिकूपरिवर्ती वाहिकाओं (diversion channels) का निर्माण किया जाता है।

(iv) सरिता तीर संरक्षण (Stream bank protection)—शहरों तथा कुछ मुख्य क्षेत्रों से बहती हुई नदी के किनारों को पक्का बना दिया जाता है ताकि तट का कटाव ना हो सके। तटों पर दोनों ओर वृक्षों की सघन पंक्तियाँ लगा देते हैं।

व्यर्थ भूमि संवर्धन
(WASTE LAND CULTURE)

भारत एक कृषि प्रधान देश है। इसकी लगभग 305 मिलियन हैक्टेयर भूमि में से लगभग आधी व्यर्थ भूमि (wasteland) है। इस व्यर्थ भूमि के अधिकांश भाग को विभिन्न साधनों के द्वारा उपयोगी व उत्पादन योग्य बनाया जा सकता है। व्यर्थ भूमि दो प्रकार की हो सकती है।

1. कृषि योग्य या संवर्धन योग्य (Cultivable or culturable wasteland)—गड्ढों युक्त, ऊँची नीची, जलमग्न, औद्योगिक भूमि. लवणीय भूमि जिसे पुनः कृषि योग्य बनाया जा सकता है, इस वर्ग में आती है।

2. कृषि अयोग्य या असंवर्धनी भूमि (Uncultivable or Unculturable wastelard)—चट्टानी, हिमाच्छादित, ऊसर, उदग्र पर्वतीय भूमि इस वर्ष में आती है।

भूमि अम्लीय (acidic) अथवा क्षारीय (alkaline) हो सकती है। अधिक अम्लीयता या क्षारीयता भूमि को ऊसर बनाती है।

अम्लीय मृदा (Acidic soils)—अम्लीय मृदा का pH बहुधा 3.00 से कम होता है जिसके कारण मृदा में उपस्थिति जीवाणुओं की क्रियाएँ अवरुद्ध हो जाती हैं।निम्न परिस्थितियों में मृदा अम्लीय हो जाती है।

(i) अम्लीय उर्वरकों (Acidic fertilizers) का अत्यधिक उपयोग।

(ii) पादपों द्वारा कैल्शियम को पोषक रूप में लेना।

(iii) मृदा के घुलनशील कारकों (जैसे मैग्नीशियम, कैल्शियम इत्यादि) के आयनों का निक्षालन (leaching)।

मृदा की अम्लीयता निम्न प्रकार से कम की जा सकती है—

(i) चूना पत्थर (limestone), कैल्शियम व मैग्नीशियम कार्बोनेट या जले हुए चूने के चूर्ण को मृदा में मिश्रित किया जाता है।

(ii) अम्लीय भूमि में उगने वाले या अम्लीयता को सहन करने की क्षमता रखने

वाले पादप जैसे लेग्यूमत पादप लगाए जाते हैं।

क्षारीय मृदा (Alkaline soil)—यह निम्न कारणों से हो सकती है—

(i) किसी कारण से जल बहकर नहीं निकल पाता और जल के वाष्पन के कारण घुलित लवण मृदा सतह पर जमते जाते हैं। जैसे राजस्थान के कुछ क्षेत्रों में।

(ii) समुद्र तटीय क्षेत्रों में ज्वार-भाटे का जल दूर-दूर तक फैल जाता है। इस जल के वाष्पन से इन क्षेत्रों में लवण जमता जाता है।

लवणों के कारण ऊसर बनी भूमि को पुनः संवर्धनी बनाया जा सकता है इसके लिए दो विधियाँ हैं—

(i) यांत्रिक विधियाँ (Mechanical methods)

(ii) रासायनिक विधियाँ (Chemical methods)

(i) यांत्रिक विधियाँ (Mechanical methods)—

अ. लवण अगर छोटे क्षेत्र में व पर्पटी के रूप में जमा हों तो उन्हें खुरचकर या तीव्र जलधारा से बहा कर हटा दिया जाता है।

ब. ढाल वाली भूमि होने पर ढाल के समकोण पर 5–7 फीट गहरी खाइयाँ खोद देते हैं। अब इस भूमि को मीठे जल से सींचते हैं। इस प्रक्रिया को दो-तीन बार दोहराने से लवण खाइयों में उस गहराई तक निक्षालित हो जाते हैं जहाँ फसलों का कम गहरा मूलतंत्र नहीं पहुँच पाता। इसके बाद इस भूमि में लवण सह (salt tolerant) फसलें जैसे—जौं, मक्का इत्यादि उगाई जाती हैं।

(ii) रासायनिक विधियाँ (Chemical methods)

(i) जिप्सम (कैल्शियम सल्फेट) चूर्ण को भूमि में मिलाते हैं। भूमि में उपस्थित सोडियम व पोटेशियम कार्बोनेटों से क्रिया कर यह अविलेय (insoluble) सल्फेट बनाते हैं जो निक्षालन या जल निकास द्वारा क्षेत्र से बाहर निकाल दिए जाते हैं। कार्बनिक खाद व सल्फर के उपयोग से भी क्षारीयता को कम किया जा सकता है।

(ii) लवण सह (salt tolerant) फसलों जैसे—चुकन्दर, धान, रजका, पटसन, सुबबूल आदि की खेती की जाती है।

वन व वन्य जन्तु
(Forest and wild life)

वन (Forest)

किसी भी देश के प्राकृतिक संसाधनों का एक भाग उसकी प्राकृतिक वनस्पति है जो नित्यदिन मनुष्य के कार्य-कलापों से प्रभावित होती रहती है। वनस्पति को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है वन (forest) व घास स्थल (grass lands)। वृक्षों, क्षुपों व अन्य काष्ठीय वनस्पति के सघन जैविक समुदाय को वन कहते हैं। तापक्रम के आधार पर भारत में चार प्रकार के वन पाए जाते हैं—

(i) उष्ण कटिबंधीय वन (Tropical forests)—ये देश के उष्ण मैदानी क्षेत्रों में पाए जाते हैं। वर्षा वाले क्षेत्रों में ये वन घने व सूखे क्षेत्रों में झाड़ियों के रूप में पाए

जाते हैं।

(ii) **पर्वतीय उपोष्ण वन** (Montane subtropical forests) – ये दक्षिण भारत के पर्वतीय क्षेत्रों जैसे नीलगिरी, महाबलेश्वर व पंचमढ़ी में 3000 से 5600 फीट तक की ऊँचाई पर पाए जाते हैं। इनमें अधिक आर्द्रता के कारण लम्बे वृक्ष, बाँस व एपिफाइट पाए जाते हैं।

(iii) **शीतोष्ण वनक (Temperate forests)** – ये 5300 फीट से अधिक ऊँचाई पर मुख्यतः हिमालय व नीलगिरी पर्वतों पर पाए जाते हैं। इनमें ओक (Oaks) व कोनिफर (Conifers) का बाहुल्य मिलता है। इन वनों में वृक्षों की शाखाओं पर मॉस (masses), अनेक आरोही लताएँ (climbers) तथा एपिफाइट (epiphytes) भी पाए जाते हैं।

(iv) **एलपाइन वन (Alpine forests)** – ये वन प्रायः ११००० फीट से अधिक ऊँचाई पर मिलते हैं। इनमें वृक्षों की लम्बाई पर्वतों की ऊँचाई के साथ घटती जाती हैं।

वनों का महत्त्व (Importance of Forests)

1. **काष्ठ** (Timber) – काष्ठ वन का प्रमुख उत्पाद है। इमारती काष्ठ वनों से प्राप्त होती है जिससे पुल, मकान, फर्नीचर, खम्बे, रेल के स्लीपर, नाव, बेडे, बैलगाड़ी औजारों के हत्थे, खेल का सामान इत्यादि बनते हैं। टीक, साल, शीशम, चीड़ देवदार, सालाई, चन्दन और इबोनी इत्यादि काष्ठ के प्रमुख वृक्ष हैं।

2. **कागज** (Paper) -- बाँस, यूकेलिप्टस, सालाई इत्यादि के काष्ठ रेशों से कागज बनता है।

3. **वन ईंधन** (Forest fuel) – विश्व में लकड़ी की कुल खपत ट 80% भाग ईंधन के रूप में काम में आता है। विकाशसील देशों में वन ईंधन ही ऊर्जा प्राप्ति का प्रमुख साधन है। धोकड़ा, बबूल, नीम, कीकर इत्यादि वृक्षों सो ईंधन के लिए काष्ठ मिलता है।

4. **सुगंधित व वाष्पशील तेल** (Scented and volatile oils) – कुछ वन उत्पादों जैसे खस, चन्दन, रोशा ग्रास, लेमन ग्रास इत्यादि से मिलने वाले तेल को सुगंध के लिए साबुन, सौंदर्य प्रसाधनों, औषधियों, अगरबत्ती व मिष्ठान में काम लेते हैं।

5. **टैनिंग (Tanning)** – ओक, हैमलॉक, बिर्च इत्यादि के पादप उत्पाद चर्मशोधन में काम आते है।

6. लाख, शहद, मोम, रेशम वन आश्रित कीटों से प्राप्त होते हैं।

7. कई कीटनाशी, विष, कपूर व औषधियाँ भी वनों से प्राप्त होती हैं।

8. गोंद, रंग, रेजिन वन वृक्षों से मिलते हैं।

9. मेवा फल जैसे काजू, चिलगोजा, अखरोट चिरोंजी, खजूर वनों से मिलते हैं।

10. कई प्रकार के मसाले, रीठा, शिकाकाई वनों से प्राप्त किए जाते हैं।

11. वन अनेक जंतुओं को आश्रय प्रदान करते हैं।

12. वातावरण संरक्षण में वनों का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। प्रकाश संश्लेषण

द्वारा वृक्ष वातावरण में CO_2 व O_2 का संतुलन बनाए रखते हैं। ये जल के वेग को कम करते हैं व मृदा अपरदन को रोकते हैं। सघन वन वर्षा का कारण बनते हैं। वन वृक्षों से छाया व फल मिलते हैं। इनकी मृत पत्तियों, टहनियों इत्यादि अपघटन से ह्यूमस बनता है जिससे भूमि की उर्वरता बढ़ती है। वन भूमि जल को सोखकर भूमि के जल स्तर को बढ़ाती है। हमारी सभ्यता व संस्कृति के वन व वन वृक्ष अभिन्न अंग हैं। अनेकों धार्मिक पर्वों पर वृक्षों (पीपल, बरगद आदि) की पूजा की जाती है। आम, पीपल, बरगद, चम्पा, भोजपत्र, कल्पवृक्ष, बेलपत्र के निकुंज मंदिरों व स्वच्छ जल के स्रोतों के आसपास लगाना आज भी शुभ माना जाता है।

वनोन्मूलन (Deforestation)– हमारे देश की बढ़ती हुई जनसंख्या वनोन्मूलन का एक मुख्य कारण है। आवास एवं कृषि के लिए वनों को नष्ट कर भूमि काम में ले ली जाती है। इसी प्रकार काष्ठ व ईंधन की आवश्यकता, पशुओं द्वारा चराई, घाटी बाँध योजनाएँ, औद्योगिक प्रसार व पर्वतीय वन क्षेत्रों में सड़कों के निर्माण ने भी वनों को नष्ट किया है। वनोन्मूलन पर्यावरण के भविष्य के लिए भीषण विनाशकारक है। सन् **1900** मे वन क्षेत्र 7000 मिलियन हेक्टेयर था जो 1975 में घटकर केलव 2890 **मिलियन** हेक्टेयर रह गया। लगभग 100 वर्ष पूर्व जो वन क्षेत्र था उसका 18.20 वन क्षेत्र आज शेष बचा है। सन् 1950 से 1970 के बीच कृषि, घाटी बाँध योजनाओं, औद्योगकि प्रसार व सड़क निर्माण के लिए क्रमशः 25 लाख, 4 लाख, 1.3 लाख व 0.60 लाख हेक्टेयर वनों को काट दिया गया। वनों की योजनाविहीन व अविवेकपूर्ण कटाई पर्यावरण के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हो रही है। वनोन्मूलन के दुष्पपरिणाम निम्नलिखित हैं—

1 वृक्षों कटाई से वर्षा कम होती है व सूखा पड़ने की संभावना रहती है। वनोन्मूलन के कारण हिमालय छोत्रो में वार्षिक वर्षा 3–4 % कम हो गई है।

2. अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में पानी के अधिक वेग को वनवृक्ष कम कर देते हैं। वनो के नष्ट होने के कारण इन क्षेत्रों में बाढ़ की आशंका बनी रहती है।

3. बहुमूल्य वन्य पादप व वन्य जीवों की कई जातियाँ विलुप्त हो गई व कई विलुप्ती के कगार पर हैं।

4. वन सम्पदा नष्ट होने से राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

वन प्रबन्ध (Forest mangagement)– विभिन्न उपायों के द्वारा वनों से प्राप्त उत्पादों को उन्नत बनाना व अधिक से अधिक अनुपात में प्राप्द करने का प्रयास ही वन प्रबध कहलाता है। वन प्रबंध के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1 आर्थिक महत्त्व के वृक्षों की संख्या व गुणवत्ता में वृद्धि करना।

2. वन में जल चक्र को बनाए रखना।

3. बन क्षेत्रों में खुले स्थलों पर चारागाह विकसित करना।

4. वन्य जीवों का संरक्षण।

5. वन्य पक्षियों के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार करना।

6 वनों की स्वच्छता व सौन्दर्य में वृद्धि करना

वन संरक्षण (Forest conservation)— वनों के विनाश को रोकने के लिए कुछ योजनाबद्ध प्रक्रियाएँ आवश्यक हैं। इनमें से कुछ निम्नलिखित हैं—

1. वनोन्मूलन (defore‥ ..ion) के द्वारा नष्ट किए गए वन वृक्षों के स्थान पर नए वृक्षों का रोपण कर

2 कृषि अयोग्य o7 मिलियन हैक्टेयर भूमि का लगभग 60% भाग वनारोपण के लिए उपयुक्त है इस पर वन वृक्षों को लगाना।

3. मृदा सुधार के उपायों द्वारा व्यर्थ भूमि का संवर्धन करना।

4. ईंधन वृक्षों का अलग से रोपण।

5. वृक्षों की अनियोजित कटाई रोकने के लिए कनूनी नियमों का कड़ाई से पालन करना

6. उपयोगी वृक्षों की कटाई के साथ ही उससे अधिक अनुपात में उन वृक्षों का पुनः रोपण।

7. ईंधन का मितव्ययता से उपयोग। ऊर्जा के पूरक स्रोत जैसे बायोगैस, सौर उर्जा इत्यादि का भी उपयोग करना।

8. जल संभरण (water shed) क्षेत्र वाले वृक्षों को काटा जाए।

9. समुचित वन प्रबंध के लिए आधुनिक विधियाँ जैसे उर्वरकों का प्रयोग, उन्नत वृक्षों में प्रजनन व ऊतक संवर्धन तकनीक इत्यादि का उपयोग करना।

10. इमारती काष्ठ के उन वृक्षों को जिनमें पुनरुद्भवन की क्षमा हो उनके मूलतंत्र को ना काटा जाए। बचे हुए मूलतंत्र से पुनः शाखाएँ प्रस्फुटित हो जाती हैं इसे गुल्मवन विधि (Coppice system) कहते हैं।

11. जन सम्पर्क माध्यमों द्वारा वनोन्मूलन से होने वाली हानियों से नागरिकों को सचेत करना।

वनों के संरक्षण के लिए केन्द्र व राज्य सरकारें महत्त्वपूर्ण प्रयास कर रही हैं। इनमें से कुछ निम्नलिखित हैं—

1. कृषि वानिकी प्रोग्राम (Agroforestry Programme)—इसमें कृषि के साथ-साथ कृषकों को वनवृक्ष आरोपण व पशुपालन के लिए उत्साहित किया जाता है।

2. सामाजिक वानिकी प्रोग्राम (Social Forestry Programme)—यह प्रोग्राम 1976 में प्रारम्भ किया गया था। इसके अन्तर्गत वनों को बचाने के लिए गाँवों की सामान्य भूमि पर चारा, ईंधन व काष्ठ प्रदान करने वाले वृक्षों को उगाया व संरक्षित किया जाता है।

3. नगरीय वानिकी प्रोग्राम(Urban Forestry Programme)—इस प्रोग्राम के अन्तर्गत मार्गों के दोनों ओर, सार्वजनिक स्थानों व निजी भूमि पर सजावटी व फलों के वृक्ष लगाए जाते हैं।

विगत कुछ वर्षों में वनों का विनाश रोकने व वृक्ष कटाई रोकने की दिशा में कुछ जन आन्दोलन हुए हैं जो नागरिकों की जागरुकता को इंगित करते हैं। इनमें से 'चिपको

आदोलन' एक महत्त्वपूर्ण पहल हैं।

चिपको आंदोलन (Chipko movement) – वर्ष 1730 में राजस्थान के जोधपुर जिले के खेजड़ली नामक गाँव में जलाने के लिए लकड़ी उपलब्ध कराने के आदेश राजस्थान के महाराज अभय सिंह द्वारा दिए गए। इस आदेश के विरोध में वृक्षों से चिपककर 363 व्यक्तियों ने अपने प्रोणों की आहुति दे दी थी। जिसका आरम्भ अमृता देवी व उनकी तीन पुत्रियों ने किया था। इस आन्दोलन के फलस्वरूप वृक्षों के काटने के आदेश वापस लिए गए। इसी प्रकार का आन्दोलन 1972 में गढ़वाल के सुदूर ग्रामीण क्षेत्रो में वनों के संरक्षण एवं विकास से सम्बन्धित उभरकर आरम्भ हुआ जसको **'चिपको आन्दोलन'** की संज्ञा दी गई क्योंकि इस आन्दोलन में वृक्षों से चिपक कर नर-नारियों द्वारा उनके काटे जाने के विरुद्ध एक संघर्ष का आह्वान किया गया था। इस आन्दोलन का नेतृत्व एवं प्रसार राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर श्री सुन्दर लाल बहुगुणा व चण्डी प्रसाद भट्ट द्वारा किया गया।

ग्रामीण विकास हेतु चिपको आन्दोलन के प्रमुख उद्देश्य निम्न प्रकार हैं—

1. ग्रामवासियों के गाँवों के समीप ही ईंधन तथा चारा उपलब्ध कराना।
2. खेती की पैदावार में वृद्धि कराना।
3. कृषि भूमि तथा गाँव के चारों ओर चकवर के रूप से वनों का विकास करना।
4. व्यावसायिक फसलों के तौर पर फलदार पेड़ों का विकास करना।
5. वृक्षारोपण में अधिक पर्यावरणीय उपज वाले वृक्षों को वरीयता देना ताकि अधिक व्यावसायिक उपज वाले वृक्षों को प्रोत्साहन मिले।
6. सामाजिक वानिकी, कृषि वानिकी तथा स्थायी-कृषि का विकास किया जाना।
7. पारिस्थितिकीय संतुलन बनाए रखने के लिए बड़े बाँधों का विरोध करना।

इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए चिपको कार्यकर्त्ताओं द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में समय-समय पर शिविरों का आयोजन भी किया जाता रहा है। इन शिविरों का आयोजन स्थानीय ग्रामीणो की पटल पर होता है।

वन जीवन (Wild life) – वन जीवन का तात्पर्य है प्राकृतिक आवास में रहने वाले जीव इनमें पादप, जन्तु व सूक्ष्मजीव सम्मिलित हैं।

वन्य जीवों का महत्त्व (Importance of wild life)

1. पारिस्थितिकीय संतुलन (Ecological balance) – वन्य जीवन प्रकृति में सतुलन बनाए रखता है। यह संतुलन अगर बिगड़ता है तो कई समस्याएँ उत्पन्न होती हैं जैसे कि माँसाहारी जन्तु अगर नष्ट होते हैं तो शाकाहारियों की संख्या बढ़ती है जो कि वहाँ की वनस्पति पर प्रभाव डालती है।

2. वैज्ञानीय महत्त्व (Scientific importance) – नई बनने वाली दवाइयों का प्रयोग सर्वप्रथम वन्य जीवों पर किया जाता है। इसी प्रकार से वैज्ञानिक अनेक नए प्रयोग भी वन्य जीवों पर करते हैं।

3. जीन बैंक (Gene bank) – कई वन्य जीवों के जीन में परिवर्तन कर नई

प्रजातियाँ विकसित की गई हैं। इस प्रकार वन्य जीवों के जीन पूल (gene pool) को रोग प्रतिरोधकता कीट प्रतिरोधकता इत्यादि गुणों के विकास के लिए काम में लिया जाता है।

4. खेल एवं मनोरंजन (Sport and entertainment)—संरक्षित वन क्षेत्रों की यात्रा, मछली पकड़ना व शिकार मनोरंजन के साधन है।

जातियों के विलोपन के कारण (Causes of extinctioin of species)

संसार के अनेक पौधे व जन्तुओं की अनेक जातियाँ, संरक्षण ना मिलने के कारण भूतकाल में विलुप्त हो चुकी हैं और अन्य अनेक जातियों की संख्या तीव्र गति से कम हो रही है व उनके विलुप्त होने की आशंका बनी हुई है। इन जातियों के विलोपन के मुख्य कारण निम्न हैं—

1. प्राकृतिक आवास का विनाश (Destruction of natural habitats)—वनों की कटाई के कारण वन्य जीवन को खतरा उत्पन्न हो गया है। इसके निम्न कारण हैं—

(i) **शरण स्थल का अभाव** (Absence of shelter)—वनों में उगने वाली वनस्पति, नदियों के किनारे व ऊँची-नीची भूमि वन्य जन्तुओं के शरण स्थल हैं। शरण स्थल के अभाव में उन्हें परेशानियों का सामना करना पड़ता है व उनकी संख्या कम होती जाती है।

(ii) **घूमने फिरने के स्थान में कमी** (Reduction in the area of movement)—वनोन्मूलन के परिणामस्वरूप वन्य जन्तुओं को मुक्त विचरण के लिए स्थान नहीं मिल पाता। इससे उनकी जनन क्षमता भी कम हो जाती है।

(iii) **जंगली पादपों का विनाश** (Destruction of wild platns)—वनोन्मूलन से कई ऐसे पादप भी नष्ट हो जाते हैं जिन पर शाकाहारी वनजीव निर्भर करते हैं तथा वे भूख से मरने लगते हैं।

(iv) **सड़क व रेल मार्ग निर्माण** (Building Proads and Railways)—सड़क व रेल मार्गों का निर्माण वन्य जीवों के विचरण के स्थान में कमी करता है तथा ये जीव वाहनों के शोर से डरकर वहाँ से भाग जाते हैं।

(v) **प्रदूषण** (Polution)—नदियों का प्रदूषित जल व वाहनों के द्वारा उत्पन्न शोर प्रदूषण वन्य भी जीवों पर बुरा प्रभाव डालते हैं।

2. शिकार (Hunting)—अत्यधिक शिकार भी वन्य जीवों के विलोचन का एक कारण है। आदमी वन्य जीवों को भोजन (food), सींग (horn), फर (fur), कस्तूरी (husk), हाथीदाँत (tusk), पंख (feather) इत्यादि के लिए मारता है। वृक्षों व जीवों के उत्पादों का उपयोग, दवाइयों, इत्र, सौन्दर्य प्रसाधन इत्यादि में किया जाता है।

3. विदेशी जातियों का प्रवेश (Introduction of exotic species)—विदेशी जातियों के प्रवेश से उनमें व स्वदेशी जातियों में खाद्य व स्थान के लिए स्पर्धा होती है। विदेशी जातियाँ या तो वातावरण प्रतिकूलता के कारण जीवित नहीं रह पाती या फिर जनन में अत्यधिक सफल होने से उनकी बढ़ी हुई संख्या स्वदेशी जातियों के लिए हानिकारक

सिद्ध होती है।

4. कानूनी खामियाँ (Legal lapss)—वर्तमान कानून वन्य जीवों को सुरक्षा प्रदान करने में असफल रहा है। नियमों का कड़ाई से पालन किया जाना आवश्यक हैं।

5. देशान्तर गमन के रास्तों में विघ्न (Distrubance of Migratory routes)—प्रवास करने वाले प्राणियों के अभिगमन मार्ग में विघ्न उत्पन्न होने से उनकी संख्या पर बुरा प्रभाव पड़ता है। मार्ग में पड़ने वाले आवास के नष्ट होने पर वे पथ से भटक जाते है व परभक्षियों का शिकार बन जाते हैं।

6. मानव अज्ञानता (Human ignorance)—वन्य जीवन के महत्त्व के प्रति मनुष्य की अज्ञानता भी जातियों के विलोपन का कारण है।

7. पौधों व जन्तुओं का निर्यात (Export of Plants and Animal)—कई पौधों व जन्तुओं का निर्यात भी किया जाता है। जिससे उनके विलुप्त होने की संभावना बढ़ जाती है।

वन्य जीवन संरक्षण (Conservation of wild life)—पादप व जन्तु जातियों के विलोपन के संकट को देखते हुए वन्य जीवन संरक्षण के विभिन्न उपाय किए जा रहे है। वन्य जीवन संरक्षण के निम्न उद्देश्य हैं।

(1) जीवन को समर्थन देने वाले तंत्रों जैसे—हवा, पानी, मृदा इत्यादि को बनाए रखना।

(2) विश्व के जीवों में आनुवांशिकी पदार्थ को यथावत रखना।

(3) जाति व पारिस्थितिक तंत्र का मानव हित में सतत उपयोग करना।

अस्तित्व संकट वाले पौधे व जन्तु (Endangered Plants and animals)—विभिन्न जातियों के विलुप्त होने की सम्भावानाओं को ध्यान में रखते हुए उनके संरक्षण के उद्देश्य से प्रकृति व प्राकृतिक संसाधन संरक्षण अन्तर्राष्ट्रीय संघ (International Union of conservation of Nature and Natural Resources—IUCN) ने इन्हें विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत किया है—

1. संकट ग्रस्त (Endangered/'E')—वे जातियाँ जिनके विलुप्त होने का भय हो। ऐसी जातियाँ बहुत कम संख्या या क्रांतिक संख्या (critical number) में पाई जाती हैं व इनके आवास भी अत्यन्त कम हो चुके होते हैं।

2. सुभेद्य (Vulnerable/'v')—वे जातियाँ जिनकी वर्तमान में संख्या पर्याप्त है लेकिन उनकी सुरक्षा सुनिश्चित ना होने का कारण इनके संकट ग्रस्त वर्ग में आने की संभावना बनी रहती है।

3. दुर्लभ (Rare/'R')—विश्व में इनकी आबादी सीमित होती है। ये सीमित भौगोलिक क्षेत्रों में पाई जाती हैं। इनके सुभेद्य होने की प्रबल संभावना होती है।

4. आंशकित (Threatened/'T')—यह शब्द ऊपर के किसी भी वर्ग के लिए उपयोग में लाया जा सकता है।

विश्व संरक्षण प्रक्रिया (World conservation Strategy)—विश्व के लगभग

100 देशों के वैज्ञानिकों ने मिलकर विश्व संरक्षण प्रक्रिया का निर्धारण किया है। जिसके अनुसार वन्य जीव संरक्षण के कुछ प्रमुख उपाय निम्न हैं—

1. वन्य जीवन को प्राकृतिक आवास में ही तथा उसकी वितरण सीमा में संरक्षित किया जाना चाहिए। इसके लिए पशुवाटिका व वानस्पतिक उद्यान बनाए जाने चाहिए।

2. विलुप्तता के निकट जातियों के संरक्षण को अन्य जातियों की अपेक्षा प्राथमिकता दी जानी चाहिए। दुर्लभ जाति से सुभेद्य व सुभेद्य से संकट ग्रस्त जातियों को अधिक प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

3. उन सभी उपयोगी पादपों व जन्तुओं की जातियों का संरक्षण किया जाना चाहिए जो राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय प्रजनन परियोजनाओं के लिए महत्त्वपूर्ण हैं।

4. देशान्तर गमन करने वाले प्रवासी जंतुओं के लिए संरक्षित क्षेत्रों का जाल बनाया जाना चाहिए।

5. पौधों व जन्तुओं के व्यापार पर कानूनी नियंत्रण को कठोरता से पालन किया जाना चाहिए।

6. लाइसेंस धारकों को ही शिकार करने दिया जावे। प्रजनन ऋतु में व जन्तुओं के बच्चों के शिकार पर पूर्णतया प्रतिबंध लगाया जावे। आखेट हेतु सीमित क्षेत्र में उनकी आबादी को बढ़ने दिया जावे।

7. राष्ट्रीय उद्यान (National Park) व पशु विहार (Sancturies) का विकास किया जावे।

लाल आँकड़ों की पुस्तक (Red Data Book)

भारतीय सरकार के **पारिस्थितिकी विभाग** (Department of Environment--D.O.E.) ने संकटग्रस्त जातियों की सूची एक पुस्तक में प्रकाशित की है जिसे **लाल आँकड़ों की पुस्तक** (Red Data Book) नाम दिया गया है। इसी प्रकार की Red Data Book, अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों जैसे IUCN द्वारा भी प्रकाशित हुई है।

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण विभाग (Botanical Survey of India—BSI) ने देश के 3/5 भाग का सर्वेक्षण पौधों की जातियों के लिए किया है और शेष 2/5 भाग का सर्वेक्षण वर्ष 1998 तक पूरा करने का लक्ष्य निर्धारित किया है। BSI ने सर्वेक्षण के आधार पर 450 संकटग्रस्त पौधों की सूची बनाई है।

इसी प्रकार भारतीय जन्तु सर्वेक्षण विभाग (Zoological Survey of India ZSI) ने भारत के लगभग 1/3 भाग में पाई जाने वाली 75000 जातियों का सर्वेक्षण कर 137 संकट ग्रस्त जीव जन्तुओं की सूचि बनाई है। कुछ संकटग्रस्त जन्तुओं को चित्र में बताया गया है।

भारत के पौधों की कुछ संकटग्रस्त जातियाँ

(Some endangered plant species of India)

1. **कैमेलिया कैडुका (Camellia caduca)**
2. **एट्रोपा एकूमिनेटा (Atropa acuminata)**

3 बैलेनोफोरा डायोका (Balanophora dioica)
4 साइलोटम नूडम (Psilotum nudum)
5 राइवुल्फिया सर्पेन्टिना (Rawvolfia serpentina)
6 निपेन्थीज खासियाना (Nepenthes khasiana)
7 रोडोडेन्ड्रोन एरीजीलम (Rhododendron arizelum)
8 वैनीला पिलि फेरा (Vanilla Pilifera)
9 वायोला फैल्कोनेरी (Viola Falconeri)
10 साइकस बैडोमी (Cycas beddomei)
11 लिलियम नीलघेरेन्स (Lilium neilgherrense)
12 पाइपर बारबेरी (Piper barberi)
13 सैनटेलम एलबम (Santalum album)
14. पोडोकार्पस नैरीफोलियस (Podocarpus neriifolius)
15 एलेन्थस कुरजी (Ailanthus Kurzii)
16 एनीमिया टोमेन्टोसा (Anemia tomentosa)

राजस्थान के संकटग्रस्त पौधे—

17. कॉम्मीफोरा विघ्टाई (Commiphora wightii)
18 हेलिक्रासम कुट्चिकम (Helichrysum cutchicum)
19 हायफीन डाइकोटोमा (Hyphaene dichotoma)
20 रोजा इन्वाल्युक्रेटा (Rosa involucrata)

भारत के जन्तुओं की कुछ संकटग्रस्त जातियाँ

Endargered animal species of India

1. कैप्ड़ लंगूर (presbytis Pileatus)
2. क्लाइडेड लैवर्ड (Neofelis nebulora)
3. गोल्डन कैट (Felis temmincki)
4. गोल्डन लंगूर (presbytis geei)
5. हिमालयन बलैक बीयर (Selenarctos thibetanus)
6. इंडियन एलीफैंट (Elephas maximus)
7. इंडियन लॉयन (Panthera leo Persica)
8. मस्क डीयर (Moschus moschperus)
9. पैंथर (Panthira Pardus)
10. नील गाय (Boselaphus tragocamelus)
11. रैड फॉक्स (Vulpes vulpes)
12. टाइगर (Panthera tigris)
13. वाइल्ड बफैलो (Bubalus bubalis)
14 वाइल्ड डॉग (Cuon alpinus)

15. वाइल्ड पिग (Sus scrofa)
16. वाइल्ड याक (Bos grunniens)
17. मार्श क्रोकोडाइल (Crocodilus Palustris)
18. घड़ियाल (Gavialis gangeticus)
19. ग्रेट इंडियन (Choriotis nigriceps)
20. पिंक हेडेट डक (Rhodonessa Caryophyllacea)

राष्ट्रीय उद्यान व पशु विहार
(National Parks and Sancturies)

भारत में लगभग 73 राष्ट्रीय उद्यान तथा 416 पशु विहार हैं जो कि लगभग 1,41,298 वर्ग किमी. में फैले हैं तथा समस्त भौगोलिक क्षेत्र का 4% भाग बनाते हैं।

I. राष्ट्रीय उद्यान (National Park)

राष्ट्रीय उद्यान वे क्षेत्र हैं जो वन्य जीवों के उन्नति व विकास के लिए आरक्षित होते हैं। इन क्षेत्रों में वनोन्मूलन, चराई, आखेट इत्यादि गतिविधियाँ निषिद्ध होती हैं। ये वन्य जीवों के आवास पर उनके संरक्षण हेतु बनाए जाते हैं तथा इनकी सीमाएँ कानून द्वारा घोषित की जाती हैं। कुछ प्रमुख राष्ट्रीय उद्यान निम्नलिखित हैं—

राष्ट्रीय उद्यान	राज्य
कागीरंगा	आसाम
हजारीबाग	बिहार
तारोबा	महाराष्ट्र
वेणुगोपाल	कर्नाटक
गिर	गुजरात
जिम कार्बेट	उत्तरप्रदेश
कान्हा, बान्धवगढ़ व शिवपुरी	मध्यप्रदेश
सिम्पलीपाल	उड़ीसा

II पशु विहार (Sancturies)

पशु विहार वह प्राकृतिक पर्यावरणीय क्षेत्र है जो सरकार द्वारा निर्धारित व संगठित किए गए हैं। इन क्षेत्रों में जानवरों को मारने तथा शिकार करने पर प्रतिबन्ध रहता है और विनाशकारी गतिविधियाँ वर्जित रहती हैं। ये प्रायः जाति विशेष के लिए बनाए जाते हैं तथा इनकी कोई निर्धारित सीमाएँ नहीं होतीं। कुछ प्रमुख पशु विहार निम्नलिखित हैं।

पशु विहार	राज्य
नन्दा देवी	उत्तर प्रदेश
केदार नाथ	उत्तर प्रदेश

गोविन्द	उत्तर प्रदेश
राजाजी कॉर्बेट	उत्तर प्रदेश
रणथम्बौर	राजस्थान
सरिस्का	राजस्थान
महानंदी	पश्चिमी बंगाल
कावल	आंध्रप्रदेश
पोचारम	आंध्रप्रदेश
काजीरंगा	आसाम
मनास	आसाम
पक्षी विहार	**राज्य**
भरतपुर	राजस्थान
वेदाथांगल	तमिलनाडु
रंगनथीटू	कर्नाटक

संकटग्रस्त जन्तु जातियों के संरक्षण हेतु *विशिष्ट परियोजनाएँ*

(Special Projects for conservation of endangered animal species)

वन्य जीवन के संरक्षण हेतु समय-समय पर कुछ विशिष्ट परियोजनाएँ भी भारत सरकार द्वारा बनाई गई हैं, जिनमें से कुछ मुख्य निम्न हैं :

1. **टाइगर प्रोजेक्ट** (Tiger Project)—वर्ष 1970 में चीतों की गिरती हुई संख्या को दृष्टि में रखते हुए IBWL (Indian Board for Wild Life) की संस्तुति पर टाइगर प्रोजेक्ट का शुभारम्भ किया। इसके अन्तर्गत 14 राज्यों में 18 टाइगर रिजर्व, 28017 वर्ग कि. मी. के क्षेत्रफल में बनाए जा चुके हैं। प्रत्येक टाइगर रिजर्व के लिए कम से कम 30 वर्ग किमी भूमि सुरक्षित की गई है। इस परियोजना के फलस्वरूप चीतों की संख्या जो 1972 में 268 थी बढ़कर 1989 तक 1237 हो गई थी।

2. **गिर लॉयन प्रोजेक्ट** (Gir lion project)—यह परियोजना गुजरात सरकार द्वारा 1972 में गुजरात के सौराष्ट्र क्षेत्र के गिर जंगलों में एशियाई शेर (Panthera lion Persica) के लिए आरम्भ की गई थी। लगभग 1,412 वर्ग किमी क्षेत्र का पशु विहार (sancturry) अब एक राष्ट्रीय उद्यान (National Park) घोषित कर दिया गया है। इस संरक्षण द्वारा शेरों की संख्या 1968 से 1974 के बीच 177 से 180 हो गई थी।

3. **क्रोकोड़ाइल ब्रीडिंग एण्ड मेनेजमैंट प्रोजेक्ट** (*Crocodile breeding and* management project)—FAO (Food and Agriculture Organisation) के सलाहकार डॉ. बसटार्ड (Dr. Bustard) की संस्तुति पर यह परियोजना 1975 में आरम्भ की गई थी। इस योजना के अंतर्गत 16 केन्द्र विभिन्न राज्यों में घड़ियाल प्रजनन (Crocodile breeding) हेतु खोले गये। वर्ष 1975 से 1981 तक कम से कम *1000* घडियाल पैदा किए गए और उनके प्राकृतिक आवास में छोड़ दिए गए।

अध्ययन बिन्दु

1. प्रौद्योगिकी की सहायता से उपयोग में लेने योग्य बनाए जा सकने वाले प्राकृतिक साधन **प्राकृतिक संसाधन** कहलाते हैं।
2. जिनका प्रकृति में पुनर्स्थापन संभव होता है वे **नवीकरणीय** संसाधन कहलाते हैं।
3. जिनका प्रकृति में पुनर्स्थापन संभव नहीं होता वे **अनवीकरणीय** संसाधन कहलाते हैं।
4. **संरक्षण** द्वारा संसाधनो को दुरुपयोग से बचाया जाता है।
5. **भूमि प्रबन्ध** द्वारा भूमि के उपजाऊपन को बनाए रखा जा सकता है।
6. अनेक प्राकृतिक कारक उपरिमृदा को स्थानान्तरित करके उसकी उर्वरता को नष्ट कर देते हैं इसे **मृदा अपरदन** कहते हैं।
7. **भूमि संरक्षण** की जैविक व यान्त्रिक विधियों द्वारा मृदा अपरदन को रोका जा सकता है।
8. **संवर्धन** द्वारा **व्यर्थ भूमि** को उपयोगी व उत्पादन योग्य बनाया जा सकता है।
9. **वन संरक्षण** व **वन प्रबन्ध** द्वारा वनों के विनाश को रोकने व उन्हें अधिक से अधिक विकसित करने के उपाय किए जाते हैं।
10. **चिपको आन्दोलन** द्वारा वृक्षों से चिपककर उनकी कटाई को रोकने का प्रयास किया जाता रहा है।
11. भारतीय सरकार के पारिस्थितिक विभाग ने संकटग्रस्त जातियों की सूची एक पुस्तक में प्रकाशित की है जिसे **लाल आंकड़ों की पुस्तक** कहते हैं।
12. भारत सरकार द्वारा वन एवं वन्य जीवों के संरक्षण हेतु **राष्ट्रीय उद्यान** व **पशु विहार** बनाए गए हैं।

अध्याय–5

पर्यावरण प्रदूषण

(Environmental Polution)

जीवों को अपनी जीवन प्रक्रिया, वृद्धि एवं विकास के लिए "संतुलित वातावरण" की आवश्यकता होती है, जिसमें वातावरण के सभी घटक एक निश्चित मात्रा व अनुपात मे मिलते हैं। वातावरण के एक या अनेक घटकों की मात्रा आवश्यकता से कम किया अधिक होने पर या हानिकारक घटकों के प्रवेश के कारण वातावरण "असंतुलित", "दूषित", "अस्वच्छ", "गंदा" अथवा "अपवित्र" हो जाता है। इससे जीवों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हानि होती हे। वातावरण के अन्दर उत्पन्न हुई "गन्दगी", "अस्वच्छता", या "अपवित्रता" को ही प्रदूषण कहते हैं। अर्थात. **प्रदूषण वायु, जल एवं स्थल के रासायनिक, जैविक एवं भौतिक विशेषताओं में होने वाला इस प्रकार का अवांछित परिवर्तन है जो मनुष्य जीवन एवं संस्कृति अथवा अन्य जीवों के लिए किसी न किसी रूप में हानिकारक है।**

प्रदूषण के कारण—प्रदूषक (Pollution Factors Pollutants)—प्रदूषण एक मनुष्य जनित समस्या है तथा मुख्य रूप से धनी एवं विकसित देशों का इसमें मुख्य योगदान है। अन्धानुकरण के कारण भारत तथा अन्य सभी विकासशील देशों ने इस समस्या को आयात कर लिया है या कर रहे हैं। खाद्यान्न एवं भौतिक साधनों में वृद्धि को ही आजकल प्रगति एवं विकास का प्रतीक माना जाता है। फलतः कृषि एवं औद्योगिक प्रगति किसी राष्ट्र के विकास की प्रगति के प्रयाय बन गये हैं। इसलिए विश्व के सभी देश प्रगति की इस दौड़ में एक-दूसरे से स्पर्धा करने में व्यस्त है तथा प्राकृतिक स्रोतों का अनिश्चित व अंधाधुंध शोषण चल रहा है। इससे मनुष्य का जीवन व स्वास्थ्य अनेक प्रकार के विकारों से ग्रसित हो गया। स्वाभाविक रूप से प्रदूषण आज के युग का सर्वाधिक विषय बना है। समाचार पत्र-पत्रिकाओं, रेडियो, टेलीविजन आदि विभिन्न संचार माध्यमों एव विभिन्न सम्मेलनों, परिषदों आदि के माध्यम से पर्यावरण प्रदूषण के कारणों एवं रोकथाम के उपायों पर विचार किया जाने लगा है। अनेक प्रकार के निमय व कानून सभी देशों में प्रदूषण की रोकथाम के लिए बनाये गये हैं या बनाये जा रहे हैं। वातावरण को दूषित होने से बचाना आज की महती आवश्यकता है।

वातावरण को तीन भागों में विभक्त किया जाता है—

(1) **स्थल मंडल** (Lithosphese)—वातावरण के इस भाग में चट्टानें, मिट्टी आदि आते हैं मनुष्य को एव पौधों को विभिन्न खनिज पदार्थ इसी भाग से प्राप्त होते हैं

(2) **जल मंडल** (Hydrosphese)–स्थल मंडल पर उपस्थित सभी प्रकार का जल (समुद्र, नदी, झील, तालाब आदि) इस भाग में आता है। सभी जीवों के जीवन के लिए जल आवश्यक होता है।

(3) **वायुमंडल** (Atmospherc)–पृथ्वी की सतह के ऊपर करीब 300 किमी ऊँचाई तक वायुमंडल फैला हुआ है। इसमें नाइट्रोजन, ऑक्सीजन, कार्बन-डाइ ऑक्साइड इत्यादि विभिन्न गैसें एक निश्चित मात्रा व अनुपात में पायी जाती हैं। वायुमंडल को ट्रोपोस्फीयर (Troposphere), स्ट्रेटोस्फीयर (Stratosphere), मिजोस्फीयर (Mesosphere), व आयनोस्फीयर (Ionosphere) उपभागों में बाँटा जाता है।

जीवमंडल (Biosphere) में वातावरण के उपरोक्त तीनों उपभागों का जीवधारियों से गहरा सम्बन्ध होता है। जीव मंडल पृथ्वी से 7 किमी. नीचे, समुद्र की करीब 10 6 कि मी. गहराई और वायुमंडल की करीब 10 कि. मी. ऊँचाई तक के भाग में फैला हुआ है।

इस प्रकार पृथ्वी जिसमे जल, थल, वायु और जीवधारी रहते हैं और अन्तर्निभर एव अंतर्प्रतिक्रियायें करते हुए एक जटिल तंत्र का निर्माण करते हैं को एक बहुत बडा पारिस्थितिकी तंत्र अर्थात् जीवमंडल (Bioshpere) कहते हैं। मनुष्य प्रगति और विकास की आधुनिक प्रचलित अवधारणा के अनुसार जो गतिविधियाँ संचालित करता है उससे स्वयं का एवं जीवमंडल के सभी जीवधारियों का जीवन बुरी तरह प्रभावित हुआ है। भारत आज दुनिया के प्रथम दस औद्योगिक देशों की गिनती में आता है और धातु, रसायन, खाद, पेट्रोलियम वस्तुओं, खाद्य पदार्थों आदि का प्रचुर मात्रा में उत्पादक है। परन्तु यहाँ पीडकनाशी (pestisides), शाकनाशी (herbisides), प्लास्टिक, रंग आदि का भी अत्यधिक मात्रा में उत्पादन होने लगा है। इनमें एवं विभिन्न औद्योगिक अपशिष्टों विशेषत जहरीली गैसों, विकिरणों तथा खनन प्रक्रियाओं ने पर्यावरण प्रदूषण का भयानक स्वरूप हमारे सामने प्रस्तुत किया है। ये उत्पाद पर्यावरण प्रदूषक हैं। अर्थात् कोई भी रसायन या भूरसायन, जैविक घटक या उसका उत्पाद या मनुष्य जितना कोई भौतिक कारक (जैसे ताप) जो वातावरण पर बुरा प्रभाव डालता है या अस्वच्छ बनाता है को प्रदूषक (pollutant) कहते हैं। ये वातावरण के जल, वायु, भूमि आदि भागों को प्रदूषित कर देते हैं। इन्हें मुख्य निम्न भागों में विभक्त किया जाता है—

(1) **गैसीय अपशिष्ट** (Gaseous wastes)–नाइट्रोजन के ऑक्साड (NO, NO_2), सल्फर डाईऑक्साइड (SO_2), कार्बन मोनॉक्साइड (CO), क्लोरीन, ब्रोमीन आयोडिन, ओजान, धूम्र कुहरे (smog)।

(2) **जटिल कार्बनिक पदार्थ** (Complex Ogranic Chemicals)–बैंजीन, ईथर, बेन्जपाइरीन्स आदि।

(3) **अम्लीय बूँदें** (Acid droplets)–नाइट्रिक अम्ल (Nitric acid), गंधक का तेजाब (Sulphuric acid) आदि।

(4) **एग्रोकेम्किल्स** (Agrochemicals)–खाद (fertilizers) पीडकनाशक

(pesticides), शाकनाशक (herbicides), कवकनाशक (fungicides), निमेटोडनाशक (nematisides), खरपतवार नाशक (weedicides) व जीवाणु नाशक (bactericides) आदि।

(5) **फ्लोराइड्स (Flourides)**

(6) **धातु**(Metals)—मरकरी (Mercury), लैड (lead), कैडमीयम (Codmium), जिंक (Zinc), लोहा (Iron), निकिल (Nickel), टिन (tin) इत्यादि।

(7) **ठोस अपशिष्ट (Solid wastes)**—कचरा, इमारतों का मलबा, प्लास्टिक, काँच, चीनी मिट्टी के बर्तन, गोबर, मृत जन्तुओं के कंकाल इत्यादि।

(8) **रेडिया एक्टिव अपशिष्ट** (Radioactive wastes)—नाभिकीय रिएक्टरों, यूरेनियम खानों, प्रायोगिक परमाणु विखण्डन या नाभिकीय विस्फोटों से उत्पन्न।

(9) **ध्वनि अपशिष्ट (Noise waste)**—विभिन्न वाहनों, कारखानों, ध्वनि प्रसारकों आदि के द्वारा।

UNEP ने प्राथमिकता के आधार पर विभिन्न अपशिष्ट एवं उनके माध्यम को इस प्रकार दर्शाया है—

	Order of Priority	Medium
1.	SO_2 + suspended particles	Air
	Strontium, caesium	Food
2.	Ozone DDT and	Air
	other oganochloride compounds	Biota, Man
3.	NO_3, NO_{2S}	Drinking water
	Nitrogen oxides	Air
4.	Mercury compounds	Food, Water
	Lead and cobalt	Food, air
5.	Petroleum hydrocarbons	Sea
	Carbon monoxide	Air
6.	Fluorides	Water (Fresh)
7.	Asbestos	Air
	Arsenic	Drinking water
8.	Mycotoxins and microbial Contaminants	Food

सभी प्रदूषकों को पारिस्थितिकी के आधार पर दो प्रमुख वर्गों में विभक्त किया जाता है—

I. अविघटनीय प्रदूषक (Nondegradable pollulants)—ये पदार्थ एवं विषाक्त रसायन होते हैं। जैसे पारे के लवण (mercuric salts), लोहा (Iron), ऐल्यूमिनियम

(aluminium) फिनेल के कुछ योगिक (Phenolic compounds) DDT प्लास्टिक आदि। ये प्रदूषक सामान्तः वातावरण में होने वाली भौतिक, रसायनिक व जैव-रसायनिक प्रक्रियाओं द्वारा विघटित नहीं होते या इनके विघटन की गति अत्यन्त धीमी होती है।अतः ये प्रकृति में एकत्रित होते रहते हैं और विभिन्न जैव-रसायनिक चक्रों व खाद्य शृंखला द्वारा जीवधारियों के शरीर में पहुँचकर अपने हानिकारक प्रभाव दिखाते हैं। इनकी अविघटनीय प्रकृति के कारण इनका पुनः चक्रण (recycling) नहीं होता है।

II जैव-विघटनीय प्रदूषक (Biodegradable pollutants) – इस वर्ग में घरेलू अपशिष्ट आते हैं जो सामान्य प्राकृतिक प्रक्रियों के द्वारा विघटित होते रहते हैं। उदाहरण—अन्न, शब्जी व फलों के अंश, मलमूत्र इत्यादि। यदि सूक्ष्मधारियों द्वारा इन पदार्थों के विघटन की दर वातावरण में इन अपशिष्टों के अनुपात में समान होती है तो पारिस्थितिक तंत्र मे इनका पुनः चक्रण (recycling) होता रहता है जो उस तंत्र के लिए उपयोगी रहता है। परन्तु इनके अनुपात के बढ़ने से वातावरण में एकत्रित होकर ये भी प्रदूषण करने लगते है।

प्रदूषण के प्रकार (Kinds of pollution) – प्रदूषकों के आधार पर प्रदूषणों को सल्फर डाइ ऑक्साइड प्रदूषण, फ्लोराइड प्रदूषण, कार्बन मोनॉक्साइड प्रदूषण, रेडियो एक्टिव प्रदूषण, ध्वनिप्रदूषण आदि में विभाजित किया जा सकता है। वातावरण के प्रकार जो प्रदूषित हो रहा है, के आधार पर प्रदूषणों को वायु प्रदूषण (air poltution), जल प्रदूषण (Water poltution) या स्थलीय प्रदूषण (land or soil pollution), आदि में विभक्त किया जाता है।

वायु प्रदूषण (Air pollution)

वायुमंडल का करीब 75% भाग पृथ्वी की सतह से 16 कि. मी. एवं लगभग 99% भाग 30 कि. मी. ऊँचाई तक के क्षेत्र में समाहित रहता है। वायुमंडल पृथ्वी के चारों ओर insulation का कार्य करता है। रेडियो तरंगों आदि के माध्यम के रूप में या हानिकारक किरणों (जैसे UV किरण) के विरुद्ध रक्षात्मक आवरण के रूप में भी वायु मडल रहता है। यह दिन व रात्रि के तापक्रम के अन्तर को कम बनाये रखता है। अग्नि, हवा, बिजली, वर्षा, बादल, बर्फ आदि वायुमंडल के कारण ही संभव हैं। सभी आवश्यक गैसों का मुख्य स्रोत भी वायुमंडल ही होता है। सामान्यतः वायुमंडल में 78% नाइट्रोजन, 21% ऑक्सीजन, 0.9% ऑर्गन, 0.03% कार्बन-डाइ ऑक्साइड व विभिन्न अन्य गैसे मिलती हैं। CO_2 प्रकाश संश्लेषण व O_2 श्वसन के लिए आवश्यक होती हैं। प्रदूषण से विभिन्न गैसों के अनुपात में अंतर आ ज़ाता है। अनेक प्रकार की हानिकारक गैसें भी वायुमंडल में मिलकर जीवधारियों को हानि पहुँचाती हैं।

वायु की गुणवत्ता के मापने के कई प्राचल (parameters) हो सकते हैं। परन्तु सामान्यतः SO_2, NO_x व SPM (निलंबित कणीय पदार्थ Suspended Particulate matter) वायु प्रदूषण की तीव्रता को सूचित कर देते हैं।

अपने देश में कलकत्ता सबसे अधिक SO_2 प्रदूषित शहर है। उसके बाद के क्रम

में मुम्बई, दिल्ली, गाँधीनगर, कानपुर, हैदराबाद, चैन्नई, नागपुर व जयपुर शहर आते है। NO_x प्रदूषण सबसे कम जयपुर व सबसे अधिक कानपुर व गाँधीनगर में हैं। SPM स्तर दिल्ली और कलकत्ता में सबसे अधिक तथा चैन्नई और मुम्बई में सबसे कम है।

SO_2 के अलावा कार्बोनिल सल्फाइड (Carbonyl sulphide COS), कार्बनडाइ सल्फाइड (CS_2) डाइमिथाईल सल्फाइड ($(CH_3)_2S$) आदि गंधक यौगिक भी वायु प्रदूषक होते हैं। मुख्य रूप से कोयले व पेट्रोलियम पदार्थों के जलने से सल्फर ऑक्साइड प्राप्त होते हैं। ताप ऊर्जा संयत्रों तथा स्वचालित वाहनों से भी काफी मात्रा में SO_2 हवा में मिश्रित होती है।

वायु में मिश्रित होने वाली कुल SO_2 का 75% भाग ताप ऊर्जा संयंत्रों, स्मेल्टिग कारखानों, व H_2SO_4 तथा खाद बनाने वाले कारखानों में जलाये जाने वाले कोयले से प्राप्त होता है। शेष 25% भाग पेट्रालियम शोधन व स्वचालित वाहनों से आता है। SO_2 से आँखों, फैफड़ों व गले के अनके रोग हो जाते हैं। यह इन भागों के श्लेष्मीय भागों द्वारा अवशोषित कर ली जाती है जिससे काफी क्षति पहुँचती है। पौधे जन्तुओं की तुलना में ज्यादा प्रभावित होते हैं। नम वायु में SO_2 से गंधक अम्ल (H_2SO_4) का निर्माण होता है। यह पर्णहरित (Chlorophyll) को अपघटित कर देता है। बायोफाइटा व लाभकेन पौधे सबसे अधिक प्रभावित होते हैं। लाभकेन को तो SO_2 प्रदूषण का सूचक (indicator) भी कहा जाता है। SO_2 इमारतों, स्मारकों, दिवारों, पत्थरों, धातुओं मूर्तियों आदि का संक्षारण (corrode) करती है।

सड़ने गलने वाली सब्जियों, जन्तुओं से H_2S गैस वातावरण में मिश्रित होती है। इसके कारण सिरदर्द, उल्टी, दस्त न्यूमोनिया जैसे रोग हो जाते हैं।

NO_x (नाइट्रोजन के ऑक्साइड्स कुछ मात्रा में स्वच्छ वायुमंडल में भी रहते है।) NO_2, NO, N_2O जैसे योगिक ऑक्सीजन व नाइट्रोजन के द्वारा सामान्य रूप से वातावरण में या अन्य जैविक प्रक्रियाओं द्वारा बनते रहते हैं। NO_2 एक रंगीन (लाल-भूरी), गैसीय प्रदूषक है जिसके आक्सीकरण से NO_3 बनाती है। जल के साथ मिलकर HNO_3 बनाती है। गंधक अम्ल व नाइट्रिक अम्ल जल के साथ मिलकर वर्षा के रूप में भूमि पर आते हैं। इसे अम्लीय वर्षा (acid rain) कहते हैं। वातावरण का अम्लीकरण एक मनुष्य जनित प्रक्रिया है। इसमें 60–70% H_2SO_4 व 30–40% HNO_3 होता है। इनके कारण भूमि में अम्लता बढ़ती है। जिससे पौधों और जन्तुओं का जीवन प्रभावित होता है।

नाइट्रिक ऑक्साइड (NO) के कारण वायुमंडल में अनेक (v) धुम्र कुहरे (Smog) में प्रकाश रासायनिक क्रियायें होती हैं। PAN (पराक्सी एसिटिलनाइट्रेट) O_3 (Ozone), कार्बोनिक यौगिक आदि प्रदूषक इन क्रियाओं के कारण उत्पन्न होते हैं। यह गैस मुख्य रूप से HNO_3 व अन्य रसायन बनाने वाली फैक्ट्रियों तथा स्वचालित वाहनों से उत्पन्न होती है। नाइट्रिक ऑक्साईड (NO) सीधे रूप से मनुष्य स्वास्थ्य को काई खास हानि नही पहुँचाती। इसी प्रकार नाइटस ऑक्साइड (N_2O) गैसों से भी सामान्यत वायुमंडल

दूषित नहीं होता।

अपने देश में वायुमंडल का SPM स्तर अन्य देशों की तुलना में काफी अधिक है। राजस्थान में कई-प्रान्तों की तुलना में SPM अधिक है। धुँआ, धूलकण, टार आदि सीमेंट फैक्ट्री, स्टोन क्रेशर, तेज आँधी या ईंधन के जलने से वायुमंडल में मिलते है। ये कणीय अंश धीरे-धीरे पृत्वी पर जमते रहते हैं तथा वायु के साथ फेफड़ों में जाकर इन्हें क्षति पहुँचाते हैं। पृथ्वी पर आने वाले प्रकाश को कम कर देते हैं। कपड़ा, कागज, चमड़ा, धातु आदि पर जम जाते हैं तथा नुकसान पहुँचाते हैं।

दो मुख्य कार्बन यौगिक—कार्बनडाई ऑक्साइड (CO_2) तथा कार्बन मोनोक्साइड (CO) वायु में प्रदूषण फैलाते हैं CO_2 जिवाश्मीय ईंधन (कोलतार व तेल) के जलने से तथा CO स्वचालित वाहनों से प्राप्त होते हैं। उदाहरणार्थ उत्तरप्रदेश में सिंग्रोली, मध्य प्रदेश में कोरबा, आंन्ध्रप्रदेश में रामागण्डम् तथा पं. बंगाल में फरक्का कोयला आधारित ऊर्जा स्टेशन बनाये जा रहे हैं। इन तथा अनेकों अन्य ताप ऊर्जा संयत्रों में कई लाख टन कायेला जलाया जाता है। इन संयंत्रों, कारखानों, घरों मं खाना पकाने आदि के माध्यम से ये गैसें वायुमंडल में मिश्रित होती रहती हैं। CO_2की कुछ मात्रा बढ़ने से प्रकाश सश्लेषण बढ़ता है जो लाभदायक है परन्तु अधिक मात्रा से अनेक नुकसान दायक प्रभाव पडते हैं जैसे **ग्रीन हाऊस प्रभाव** (Green house effect)। CO_2 मुख्यतः ट्रायोस्फीयर (Troposphere) में ही होती है। पृथ्वी पर ताप का नियंत्रण CO_2 के द्वारा होता है। यह सूर्य किरणों के पृथ्वी पर टकराने और गर्मी के रूप में वापस अंतरिक्ष में जाने के बीच संतुलन बनाने से होता है। यदि CO_2 की मात्रा बढ़ जाती है तो एक मोटी परत इस गैस की बन जाने से सूर्य-किरणे तो पृथ्वी पर आती है परन्तु गर्मी वापस नहीं जा पाती। फलतः पृथ्वी पर ताप (temperature) बढ़ने लगता है। यह एक ग्रीन हाऊस की काँच की दिवार या कार की काँच की खिड़की तरह कार्य करती हैं जो प्रकाश की किरणें तो ग्रीन हाऊस या कार के अन्दर आने देती हैं पर गर्मी को बाहर नहीं जाने देती। इसलिए इस प्रभाव को **ग्रीन-हाऊस प्रभाव** (Green-house effect) कहते हैं। एक अनुमान के अनुसार करीब 100 वर्ष पूर्व CO_2 की मात्रा 275ppm, आज 350 ppm व आगामी 40-45 वर्षों में करीब 450 ppm हो जाने की संभावना है। स्वाभाविक रूप से पृथ्वी का तापक्रम भी बढ़ेगा। हालांकि अन्य गैसें SO_2, NOS/T भी ग्रीन हाऊस प्रभाव को बढ़ाती हैं। इसी कारण UNEP (United Nations Environment Programme) us 1989 esa में (5th June world environment day 1989) Global warming ; Global warning का नारा दिया।

CO (Carbon monoxide) भी एक प्रमुख वायु प्रदूषक है जो मुख्य रूप में स्वचालित वाहनों तथा स्टोव, कोयला खानों के जलने, ताप ऊर्जा संयंत्रों, वन-आग आदि से बनती है। वायुमंडल में मिश्रित होने वाले कुल प्रदूषकों का 60% CO होती है तथा स्वचालित वाहनों से उत्पन्न कुल प्रदूषकों का 80% होती है। वायुमंडल में 0 से 0.5ppm तक CO होती है। लेकिन शहरी क्षेत्रों में यह 5 से 50 ppm तक भी हो जाती है।

मनुष्य में कैंसर, त्वचा रोगों के खतरे बढ़ जाते हैं। लेकिन पृथ्वी की सतह के पास O_3 की मात्रा बढ़ने से कई समस्यायें खड़ी हो जाती हैं। मनुष्य के स्वास्थ्य एवं फसल पर बुरा प्रभाव पड़ता है। पौधों में सटोमेटा के द्वारा अन्दर जाकर पत्तियों की क्षति करती है। पर ऑक्सीएसिटिल नाइट्रेट (PAN), हाइड्रोजन परऑक्साइड (H_2O_2) जैसे ऑक्सीकारक एव O_3 नाइट्रोजन डाइऑक्साइड (NO_2) हाइड्रोकार्बन्स की क्रियाओं के कारण उत्पन्न होते हैं। ओजोन UV विकिरणों के NO_2 पर प्रभाव से भी बनती है। ये प्रकाश रसायन-धूम्रकुहरे (Photochemical smog) का निर्माण करते हैं।

राजस्थान, गुजरात, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक आदि प्रान्तों में औद्योगिक प्रक्रियाओं से फ्लोराइड्स वायुमंडल में मिश्रित होते रहते हैं। ये प्रदूषक गैस या कणों के रूप में वायु को प्रदूषित करते हैं। कोनिफर पौधों की पत्तियों में इनके कारण "टिप बर्न" (tip burn) हो जाते हैं।

दुपहिया एवं तिपहिया वाहनों के कार्बरेटर्स (carburettors) क्रेन्ककेस (crankcase) आदि से गैसोलीन के वाष्पीकरण से बेन्जीन (benzene), बेंजपाइरिन (benzpyrene) तथा मिथेन (methane) जैसे गैसीय हाइड्रोकार्बन्स वायु को प्रदूषित करती हैं। इनके कारण फेफड़ों में केन्सर हो सकता है। ये UV की उपस्थिति में NO_X से क्रिया करके PAN व O_3 बनाते हैं।

वायु में लैड, जिंक, कैडमियम व मरकरी जैसे धातु भी होते हैं। ये वायु के साथ फेफड़ों में जाकर अनेक प्रकार के रोग करते हैं।

जल प्रदूषण
(Water pollution)

जल एक महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है। मनुष्य सिंचाई, उद्योग, जहाज, घरेलू आवश्यकताओं, तथा अपशिष्टों की व्यवस्था हेतु जल पर निर्भर करता है। नदियों, तालाब, झरने आदि से पीने का पानी उपलब्ध होता है। अधिकतर गाँव तथा शहर इन जलाशयों के किनारे बसे हैं। आबादी की अधिकता एवं मनुष्य अपनी आवश्यकतानुसार इन जल स्रोतों में अनेक प्रकार के अपशिष्ट डाल देते हैं। सामान्यतः तो पानी कभी भी एकदम शुद्ध नहीं रह पाता परन्तु इस प्रकार अनेक पदार्थों के पानी में मिलने से पानी अशुद्ध हो जाता है। जल में कुछ गैसें (CO_2, H_2S, N_2, NH_3), खनिज Ca, Mg, Na, K के लवण) सूक्ष्म जीव एवं निलंबित मिट्टी आदि के कण पानी में घुलकर या निलंबित रहकर इसे अस्वच्छ कर देते हैं। जल प्रदूषण के मुख्य स्रोत वाहित मल (Sewage), उद्योगों के विसर्जित अपशिष्ट, कृषि में उपयोग आने वाले रसायनिक उर्वरक विभिन्न उद्योगों से उत्पन्न ताप व रेडियाधर्मी पदार्थ आदि होते हैं।

वाहित मल (Sewage)– घरेलू अपशिष्ट एवं मनुष्य और जन्तुओं के अपशिष्ट मल, आधुनिक कपड़े धोने के चूर्ण, (Powder) अर्थात् अपमर्जक (detergents), साबुन, कपड़ा, कागज के टुकड़े आदि इसके अन्तर्गत आते हैं। सामानयतः ये कार्बनिक पदार्थ होते हैं तथा सूक्ष्म जीवों के द्वारा अपघटित होते रहते हैं अधिकाश अपशिष्ट के आक्सीकृत

चित्र 5.2 जल प्रदुषण

हो जाने के कारण यदि अपशिष्ट की मात्रा कम हो जाती है तो जल का प्रदूषण नही होता। परन्तु यदि जलाशय में अनुपात में अधिक अपशिष्ट आ जाते हैं तो जल प्रदूषित हो जाता है। कई बार अधिक उर्वरता के कारण जलाशय सुपोषी (eutrophic) बन जाते है। इससे अनेक शैवाल बहुत अल्प समय में ही वृद्धि करके जलाशय को भर देते है इसे शैवाल ब्लूम कहते हैं। सामान्यतः जलाशयों में स्वनियमिक पुनः चक्रण (self regulatory recycling) चलता रहता है। सीमा से अधिक अपशिष्टों से यह पुनः चक्रण प्रभावित होता है। अधिक अपशिष्टों के कारण अधिक सूक्ष्मजीव पैदा होते हैं। इससे इनके श्वसन द्वारा O_2 की मात्रा कम होती है एवं CO_2 की मात्रा बढ़ती है और पानी में रहने वाले जंतु व पौधे मर जाते हैं। वाहित मल में अनेक प्रकार के संक्रामक जीवाणु होने से ऐसे प्रदूषित जल को उपयोग में लेने से मनुष्य व जन्तुओं में हैजा, पीलिया, टायफॉयड जैसे अनेक रोग हो जाते हैं।

एक इकाई आयतन जल में किसी निर्धारित समय में O_2 की मात्रा ज्ञात करके कार्बनिक प्रदूषकों की मात्रा का पता लगाया जाता है। इस प्रकार से प्रदूषक मात्रा मापन को बायोलोजिकल-ऑक्सीजन-डिमाण्ड (Biological-Oxygen Demand – BOD) कहा जाता है। चूँकि वाहित मल का जैविक अपघटन एक ऑक्सीय प्रक्रिया है, अतः सूक्ष्म जीवों का पानी में बढ़ना उस पानी की ऑक्सीजन की आवश्यकता (BOD) को बढाता है।

कृषि में काम आने वाले उर्वरक (fertilizers), पीडकनाशी (Pestisides), बायोसाइड्स (biosides) आदि—कृषि में काम आने वाले विभिन्न कृत्रिम उर्वरक (मुख्य रूप से यूरिया, फास्फेट व पोटाश) तथा पीडकनाशी, कीटनाशी, जीवाणुनाशी आदि रसायन सामान्यतः उपज बढ़ाने, बिमारियों को नियंत्रित करने आदि के लिए उपयोग में लिये जाते हैं। लेकिन जल के साथ बहकर ये जलाशयों में पहुँच जाते हैं। विकसित देशों की तुलना में भारत में इनका उपयोग कम होता है। (भारत में करीब 16 kg/ha तथा विश्व में

54kg/ha) परन्तु इनके कारण जल प्रदूषित होता है और अनेक समस्यायें उत्पन्न हो जाती है—

कृत्रिम उर्वरक (Artificial fertilizers) – विभिन्न प्रकार के रसायनिक उर्वरक विभिन्न अपशिष्टों के साथ बहकर तालाबों या पोखरों में पहुँच जाते हैं जिनके आसपास खेती की जाती है। जलाशय भी सुपोषी हो जाते हैं। जिससे शैवाल ब्लूम बनते हैं। साथ ही मिट्टी में इन रसायनों की अधिकता से ह्यूमस

बन पाता क्योंकि सूक्ष्म जीवी प्रक्रियायों कम हो जाती हैं। अतः मिट्टी नरदित हो जाती है। केवल कुछ ही खनिज पौधे वा इनसे प्राप्त होते हैं वश्यक खनिजों की पौधे में कमी हो जाती हैं। इससे पौधे में खनिज के कारण अनेक विकार उत्पन्न हो जाते हैं। पौधों में रोग-प्रतिरोधिता की है। नाइट्रेट उर्वरक मिट्टी में से होकर कुओं और तालाबों में पहुँचते हैं न में नाइट्रेट्स की अधिकता हो जाती है इस प्रकार का पानी पीने योग्य तथा अनेक रोग उत्पन्न करता है। नाइट्रेट आंतों में सूक्ष्म जीवों द्वारा ल दिये जाते हैं। रक्त में जाकर नाइट्राइट हीमोग्लोबिन के साथ मिलकर (methaemoglobin) में बनाते हैं जिससे रक्त की O_2 ले जाने की जाती है। इसे मैथ्हीमोग्लोबिनेमिया (methemoglibinamia) कहते है।

नाशी तथा बायोसाइड्स (Pesticideis and Biodides) – जन्तु व पादप .) को नष्ट करने के लिए जिनरसायनों को उपयोग में लेते हैं उन्हें पीड़कनाशी कहते हैं। इसके अन्तर्गत कवकनाशी (fungicides), जीवाणुनाशी .), कीटनाशी (insecticides), तथा निमेटोडनाशी (nemotidicides) नाशी (herbicides) या खरपतवारनाशी (weedicides) भी इसी श्रेणी ते हैं परन्तु शाक या खरपतवार अन्य सूक्ष्म जीवों के समान नहीं होते। कार्य भी पीड़कनाशी जैसा ही होता है। सभी प्रकार के पीड़कनाशी व खरपतवारनाशी रसायनों को मिलाकर बायोसाइड (biocides) कहते हैं। त्त्वपूर्ण बायोसाइड्स होते हैं—

टी DDT (dichloro-diphenyl-trichloroethane)

च सी BHS(benzene hexa hloride)

पीसीबी. PCB_S (polychlorinated biphenyls)
एल्ड्रिन (aldrin)
एन्ड्रिन (endrin)
क्लोरडेन (chloradane)
हेप्टाक्लोर (heptachlor)
मियोक्षी क्लोर (methoxychlor)
टोक्षाफेन (toxaphene)

इनमें से अधिकतर क्लोरीनयुक्त हाइड्रोकार्बन हैं। इनमें से अधिकतर अत्यन्त ... पदार्थ (Hararus substances) अथवा विषैले (toxicants) होते हैं। ये खाद्य ... में प्रवेश कर जाते हैं तथा अविघटनीय (nondegradable) होने के कारण उत्तरोत्तर ...तरों पर इनकी सान्द्रता बढ़ती जाती है। इसे रसायन जैविक आवर्ध (biological ...ication or amplification) कहते हैं। इन सबमें DDT का उपयोग बहुधा ...रोगों, मच्छरों आदि के नाश के लिये किया जाता है। खाद्य श्रृंखला के द्वारा यह मछलियों में पहुँच जाते हैं और मनुष्य द्वारा इन्हें खाये जाने पर मनुष्य के स्वास्थ्य ...पर हानिप्रद प्रभाव दिखाते हैं। DDT वसा में घुलनशील हैं अतः वसा ऊतकों ...त हो जाता है। वसा का श्वसन द्वारा अपघटन होने पर यह रसायन रक्त में ...ता है और विषकारी प्रभाव दर्शाता है। DDT का उपयोग एक गम्भीर मृदा व ...षक बन गया है। बायोसाइड हमारे उपयोग के अनाज (गेहूँ, चावल), शाक, फल ... शरीर का एक एकात्म भाग बन गये हैं अतः पानी से धोने पर भी ये नहीं हटाये ...ते।

औद्योगिक भौतिक अपशिष्ट (Industrial physcal wastes ...nts)—सामान्यतः ताप व न्यूक्लीयर ऊर्जा संयंत्रों में बहुत अधिक मात्रा में जल ...योग होता है। लेकिन उद्योगों में पानी का उपयोग होता हैं तथा उपयोग के बाद ...युक्त जल विभिन्न नदियों, झीलों को प्रदूषित करता है। ऊर्जा संयंत्रों से निकलने ...त का ताप बहुत अधिक होता है जो जलीय जीवन को हानि पहुँचाता है।

ध्वनि प्रदूषण (Noise pollution)—नोइज (noise) शब्द लेटिन शब्द नौसिया ... = वमन की इच्छा) से बना है। ध्वनि प्रदूषण का अर्थ है वायुमंडल में अनचाही ...छनीय ध्वनि अर्थात् शोर (noise) का भर जाना। यदि ध्वनि की प्रबलता इतनी बढ़ जाती है कि व्यक्ति उससे असुविधाजनक महसूस करता है तो इसे ध्वनि ... कहते हैं। कार, बस, ट्रक, ट्रेन, हवाई जहाज, रेडियो, टेलीविजन, लाऊडस्पीकर, ...लॉन मूवर, हार्न, सायरन आदि ध्वनि प्रदूषक हैं।

अत्यधिक ध्वनि (शोर) हमारी चिड़चिड़ाहट या क्रोध को तो बढ़ाती ही है हमारे ...पर भी हानिकारक प्रभाव डालती हैं। शोर हमारी श्रवण क्षमता को कम करता है ... अवरोधक होता है। औद्योगिक नगरों व घनी आबादी क्षेत्रों में रहने ...को अपेक्षाकृत कम आयु में ही कम सुनाई देने लगता है अधिक तीव्र शोर

कर

चित्र 5.4 ध्वनि प्रदूषण
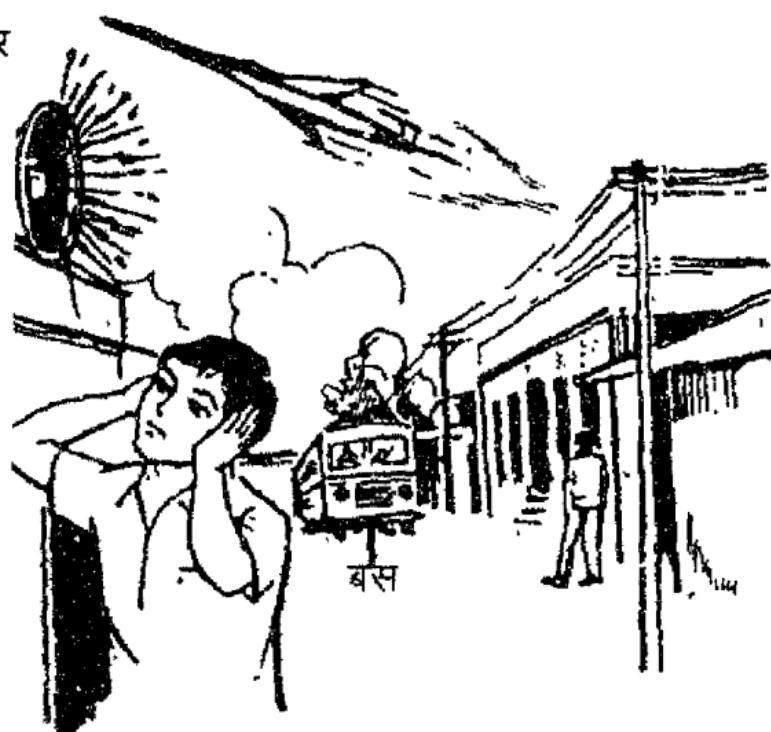
ी फैल जाती है। त्वचा पीली पड़ जाती है। जठर-रसो का स्त्रवण
। शोर से हमारी धमनियाँ संकुचित होती हैं तथा हृदय को तेजी से
बाध्य करती हैं। शोर से हमारा मानसिक तनाव बढ़ता है। औद्योगिक
दायिक एवं धार्मिक गतिविधियों के माध्यम से भी ध्वनि प्रदूषण होता

दो आधारभूत गुण, प्रबलता (loudness) तथा आवृत्ति (frequency)
की मापक इकाई डेसिबिल (decibel) होती है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक
am Bell) ने इसे प्रस्तुत किया। इसे dB द्वारा प्रदर्शित किया जाता
नि (whisper) की तुलना में कोई ध्वनि कितनी तीव्र हैं उसे dB में
। है। यह लॉग स्केल पर दशक के संदर्भ में व्यक्त की जाती है।
ऽ सुनाई देने वाली ध्वनि 10dB, धीमी मर्मरध्वनि (whisper) करीब
स्थान पर 30dB, सामान्य बातचीत 35-60dB, भारी सड़क यातायात
र फैक्ट्री 120dB, आदि होती हैं। कुछ ध्वनि स्रोतों की तीव्रता नीचे

ान्यत: अधिक स अधिक 80dB तक की तीव्रता वाली ध्वनि को सहन
से ऊपर की ध्वनि तीव्रता को ध्वनि प्रदूषण माना जाना चाहिए क्योंकि
ा पर श्रवण तंत्र को नुकसान पहुँचता है। WHO ने शहरों के लिए
किया है। दिल्ली, मुम्बई, कलकत्ता, मद्रास जैसे महानगरों में 90 dB
। तीव्रता अंकित की गई हैं। सुपरसोनिक जैट (ध्वनि गति से तेज

ो को छोड़ता जाता है जिन्हें ध्वनि बूम (sonic boom)
कर इमारतों आदि में घड़घड़ाहट पैदा करते हैं। इमारतो

दूषण (Radiation pollution)

ई जो उस तत्त्व के गुणों को समाहित करते हुए अस्तित्व
कहते हैं। प्रत्येक तत्त्व के परमाणु में निश्चित संख्या मे
हाते हैं। प्रकृति में बहुत से परमाणुओं में न्यूट्रोन की
ऽ अनुरूप नहीं रहती। एक ही परमाणु की इस प्रकार
स्थानिक या आइसोटोप्स (isotopes) कहते हैं। परन्तु
विकिरण (radiations) निकालते हैं। जिन्हें आयनकारी
कहते हैं। इस प्रकार के आइसोटोप्स को रेडिया एक्टिव
pes) कहते हैं।
प्रकार के होते हैं :—

रण—ये भौतिक गुणों में प्रकाश जैसे होते हैं। ये निम्न

iolet rays)
)
ıma rays)
nfrared rays)
) waves)
ible light rays)

rticulate radiations)—इनमें परमाणु से बहुत तीव्र
लेकर बाहर निकलने वाले कण (particles) होते है।
होते हैं। ये निम्न प्रकार के होते हैं—

articles)—ये तेज गति के इलेक्ट्रोन होते हैं।
particles)—ये तेज घूमने वाले कण होते हैं जिनमें

n particles)
rgetic nentrons)
mic rays)—ये उर्जित कण सूर्य तथा बाहरी अंतरिक्ष

नुष्य जनित होते हैं। कॉस्मिक किरणें, वातावरण (चट्टान,
से उत्पन्न विकिरण प्राकृतिक विकिरण होते हैं। रेडियो
खनिज के रूप में मिलता है। वैज्ञानिकों ने अनेक
द्वारा कृत्रिम रूप से भी बनाये हैं परन्तु इनको

सक्रियता समाप्त करना या कम करना संभव नहीं होता। लम्बे कालांतर में अत्य
त से यह कम होती रहती है। प्लूटोनियम को न्यूक्लीक बॉम्ब में उपयोग
ता है। इसकी अर्ध आयु (half life) 24360 वर्ष आंकी जाती हैं तथा विकिर
। इस काल के बाद तक रहता है। न्यूक्लीय रिऐक्टरों की अधिकतम सक्रि
वर्ष होती है। परन्तु इसके बाद न तो इन्हें तोड़ा जा सकता है न ही अन्य स्था
नरित किया जा सकता है। सक्रिय रिएक्टरों से निकले अपशिष्ट तथा बेकार ब
से वायु, जल व मिट्टी में कुछ न कुछ मात्रा में रेडियोएक्टीविटी रिसती रहत
कि इनका निर्माण बहुत सावधानी पूर्वक किया जाता है।
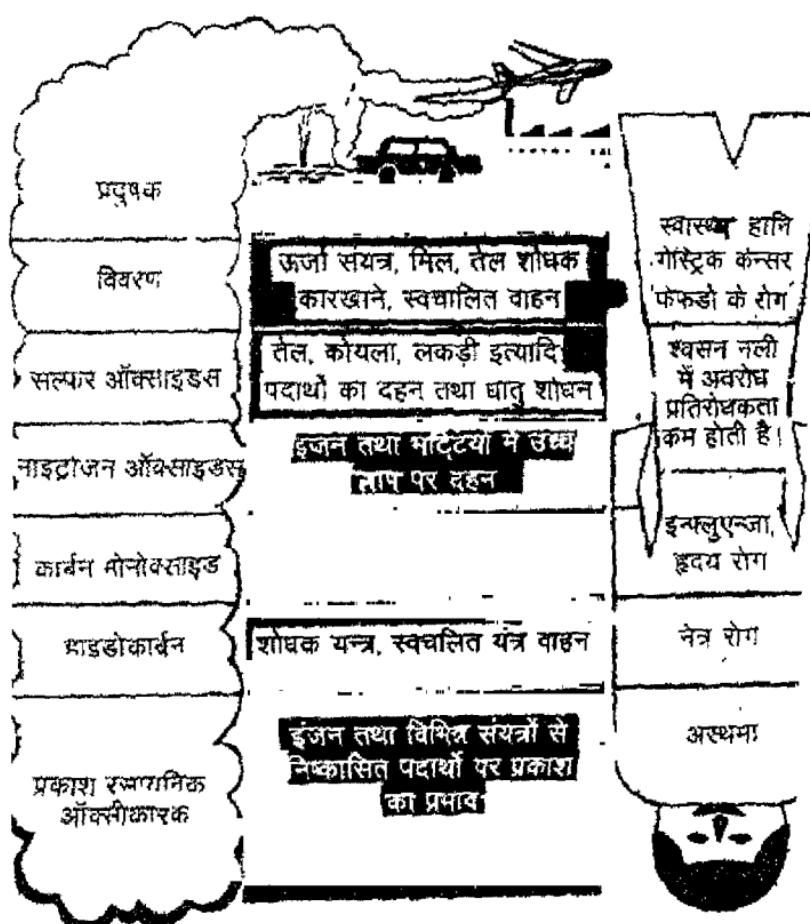
चित्र 6.5 मुख्य प्रदुषक तथा उनका स्वास्थ्य पर प्रभाव

रेडियोएक्टिव पदार्थ बहुत विषैले होते हैं। रेडियोलाजिस्ट, यूरेनियम खान मज
पेंटर के शरीर की कोशाओं व ऊतकों पर इनका सीधा प्रभाव पड़ता है। नागासा
शमा के लोगों के अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शरीर
र इनका असर तुरंत या देर से हो सकता है। सीसियम (cesium) शरीर
स्ट्रॉन्शियम (Strontium) अस्थियों तथा आयोडीन (Iodine) थायरॉ

oid) ग्रन्थि में एकत्रित हो जाते हैं। इनके कारण जन्मजात शारीरिक विकृति, ाविक अंग परिवर्धन तथा केन्सर जैसी बिमारियाँ हो सकती हैं। रेडियोऐक्टिव का आनुवंशिक प्रभाव भी पड़ता है। इनसे म्यूटेशन (mutations) हो जाते हैं।

प्रदूषण नियन्त्रण के उपाय

अधिक खाद्यान उत्पादन एवं औद्योगिक विकास के साथ-साथ पर्यावरण प्रदूषण ःश्यम्भावी होता है अतः प्रगति के इन मानदंडों के साथ प्रदूषण नियन्त्रण के उपाय चना मनुष्य समाज के लिए आवश्यक हो गया है। प्रदूषण को उसके स्रोत स्थान रोकना सबसे उत्तम उपाय हो सकता है। वातावरण में प्रदूषण रोकथाम हेतु निम्न किये जा सकते हैं—

कारखानों की चिमनियाँ पर्याप्त ऊँची होनी चाहिए तथा उनमें **फिल्टरों** का उपयोग किया जाना चाहिए। इससे इनसे निकलनी वाली धुआँ और गैसों के प्रभाव में कमी लायी जा सकती है।

स्वचालित वाहनों द्वारा CO तथा लैड जैसे हानिकारक प्रदूषक वायुमंडल में मिश्रित होते हैं। वाहनों के इंजिनों में इस प्रकार के **परिवर्तन** किये जायें कि इन पदार्थों का उत्सर्जन रुक सके। कुछ सीमा तक इंजिनों में इस प्रकार की तकनीकों का उपयोग प्रारम्भ भी हुआ है।

व्यक्तिगत वाहनों के स्थान पर **सामूहिक यातायात** के साधनों के उपयोग से वायु मण्डल में प्रदूषण में कमी हो सकती है।

आणविक ऊर्जा को **विनाश** (सामरिक हथियार आदि) के स्थान पर **विकास** का साधन बनाया जाय। आणविक ऊर्जा एक महत्त्वपूर्ण वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत हो सकता है।

प्रदूषण रहित ऊर्जा स्रोतों की संभावनाएँ तलाशना आज की महान् आवश्यकता है। **सूर्य ऊर्जा** इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण विकल्प हो सकती है।

औद्योगिक व घरेलू अपशिष्टों को **पुनर्चक्रण** द्वारा लाभदायक उपयोग में लिया जाना चाहिए।

अपशिष्ट आवक की स्रोत स्तर पर ही कमी, जैवभार को समय-समय पर हटाने, पोषकों के प्रबन्धन, मछली प्रबन्धन आदि द्वारा **पारिस्थितिक तंत्र** स्थिरीकरण के माध्यम से जल प्रदूषण पर प्रभावी रोक लगायी जा सकती है।

इलेक्ट्रोलिसिस, आयन-विनिमय, विपरीत-दिशीय परासरण आदि विधियों द्वारा विभिन्न रासायनिक, जैविक व रेडियोधर्मी प्रदूषकों को जल से हटाया जा सकता है। अमोनिया, मरकरी, फिनोलिक्स, सोडियम लवणों को इन विधियों द्वारा सफलतापूर्वक अलग किया जाता है।

स्वचालित वाहनों, वायुयानों आदि के इंजिनों में **ध्वनिरोधक तकनीक** द्वारा ध्वनि प्रदूषण पर नियन्त्रण किया जाना चाहिए।

पेड़ ध्वनि तथा कई प्रकार के वायु प्रदूषकों को अवशोषित कर लेते हैं। वायुमण्डल

के O_2–CO_2 अनुपात को नियन्त्रित कर लेते हैं। विभिन्न प्रदूषकों को अधिक पेड़ लगाकर नियन्त्रित किया जा सकता है।

11. निरन्तर शोध द्वारा प्रदूषण रोकथाम को नये-नये उपाय तलाशने चाहिए।
12. प्रदूषण नियन्त्रण हेतु राज्य द्वारा कानून बनाना तथा उनकी पालना नही होने पर दण्ड की व्यवस्था की जानी चाहिए। अपने देश में इस दृष्टि से विभिन्न कानून बनाये गये हैं—

    (अ) **जल (प्रदूषण रोकथाम एवं नियन्त्रण) एक्ट 1974**—इसमें 1988 में संशोधन किया गया।

    (ब) **वायु (प्रदूषण रोकथाम एवं नियन्त्रण) एक्ट 1981**—इस एक्ट में 1987 में संशोधन किया गया तथा ध्वनि को भी वायु प्रदूषकों की श्रेणी में शामिल किया गया।

    (स) **पर्यावरण (सुरक्षा) एक्ट 1986।**

    (द) **मोटर वाहन एक्ट 1988।**

इन एक्ट के प्रावधानों के अनुसार **केन्द्रीय/राज्य प्रदूषण बोर्डों** की स्थापना की गई है। वायु की गुणवत्ता की देखभाल के लिए देश में करीब 150 **व्यापक गुणवत्ता निर्देशक स्टेशनों** (Ambient air quality monitoring stations) की स्थापना की गई है। SO_2, NO_x, SPM, ताप, आर्द्रता, वायुगति एवं दिशा आदि की मात्रा की जाँच इनके माध्यम से होती है। **"राष्ट्रीय जल गुणवत्ता निर्देशक कार्यक्रम"** (National Water Quality Monitoring Programme) के माध्यम से नदी जल की गुणवत्ता का प्रबोधन किया जाता है। गंगाजल की गुणवत्ता को पुनर्स्थापित करने हेतु पर्यावरण एवं वन मंत्रालय मे विशेष रूप से **गंगा प्रोजेक्ट निदेशालय** की स्थापना की गई।

अध्ययन बिन्दु

1. वातावरण के विभिन्न घटकों में होने वाले अवांछित परिवर्तन को **प्रदूषण** कहते हैं।
2. **वायु प्रदूषण** में अनेक प्रकार की हानिकारक गैसें वायुमण्डल में मिलकर जीवधारियो को हानि पहुँचाती हैं।
3. वायुमण्डल में CO_2 की बढ़ती हुई मात्रा **ग्रीन-हाऊस प्रभाव** द्वारा पृथ्वी के बढते हुए तापक्रम के लिए उत्तरदायी है।
4. वाहित मल, उद्योगों के विसर्जित अपशिष्ट, रसायनिक उर्वरक रेडियोधर्मी पदार्थ इत्यादि **जल** को **प्रदूषित** कर देते हैं।
5. **प्रदूषित जल** पीने से मनुष्य व अन्य जीवों में **अनेक रोग** हो जाते हैं।
6. वायुमण्डल में **अवांछित शोर ध्वनि प्रदूषण** का कारण होता है।
7. **ध्वनि प्रदूषण** हमारे स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालता है।
8. **विकिरण प्रदूषण** के कारण **शरीर विकृति** तथा **कैंसर** जैसी बीमारियाँ हो सकती हैं। इनका आनुवांशिक प्रभाव भी पडता है।

इकाई--2

अध्याय-6

जैव प्रौद्योगिकी अर्थ एवं महत्त्व

जैव प्रौद्योगिकी वर्तमान में विज्ञान की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण शाखा है। यह बहुत ही तेज गति से विकास कर रही है। मानव जीवन के हर पहलू को प्रभावित कर रही है। इस कारण जहाँ इसके समर्थन में जबर्दस्त वातावरण है तो अनेक वैज्ञानिक इसका विरोध करने को भी उठ खड़े हुए है। ऐसी स्थिति में जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में होने वाले नित्य नये अनुसन्धानों की जानकारी रखना प्रत्येक प्रबुद्ध नागरिक के लिए आवश्यक हो गया है। जीव विज्ञान के विद्यार्थी हेतु तो यह अनिवार्य है।

जैव प्रौद्योगिकी क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर आसानी से नहीं दिया जा सकता क्योकि इस प्रसंग में विद्वानों ने भिन्न-भिन्न विचार प्रकट किये हैं। जैव प्रौद्योगिकी शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के शब्द Biotcchnology के हिन्दी अनुवाद के रूप में किया जाता है। **बायो टेक्नोलोली शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्द Bios + Techanologyia** से बना है। **जैव प्रौद्योगिकी का सरलतम अर्थ यहहै कि जीवों के द्वारा औद्योगिक उत्पादन**। परन्तु जैव पौद्योगिकी का क्षेत्र उद्योगों तक ही सीमित नहीं है।

स्पीन्क (1980) ने जैव प्रौद्योगिकी को परिभाषित करते हुए कहा कि उत्पादन व मानव सेवा में जीवों, जैविक तन्त्रों व क्रियाओं का उपयोग जैव प्रोद्योगिकी है। जैविक साधनों के द्वारा पदार्थों का उपचार व सेवा करने में वैज्ञानिक व अभियान्त्रीकीय सिद्धान्तो व क्रियाओं के उपयोग को जैव प्रौद्योगिकी कहते हैं।

जापानी जैव प्रौद्योगिकी विज्ञ (Japanere Biotechnologist) के अनुसार—उपयोगी पदार्थों की प्रतिकृतियाँ तैयार करने व उनका उत्पादन मं जैविक परिघटनों का प्रौद्योगिक उपयोग ही जैव प्रौद्योगिकी है।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की राष्ट्रीय विज्ञान फाउन्डेशन के अनुसार—**सूक्ष्म जीवों, कोशिकांगों जैसे जैविक साधनों का मानव हित में नियन्त्रित उपयोग ही जैव प्रौद्योगिकी है।**

जैव प्रौद्योगिकी का इतिहास

जैव प्रौद्योगिकी वर्तमान में मानव जीवन को जिस तरह प्रभावित कर रही है वैसी

स्थिति पूर्व मे नहीं रही फिर भी इसका इतिहास बहुत पुराना है। किण्डवन क्रिया द्वारा शराब सिरके जैसे पदार्थ का उत्पादन आदि मानव में कब से शुरु कर दिया था इसका तो निर्धारण करना भी मुश्किल है। बेबीलोन वासियों द्वारा ईसा से 6000 वर्ष पूर्व शराब बनाने के प्रमाण मिले हैं। भारत में सोमरस का प्रचलन भी ईसा से हजारों वर्ष वूर्प प्रारम्भ हो गया था। खमीर के उपयोग से विविध खाद्य पदार्थ तैयार करना भी मानव हजारो वर्ष पूर्व सीख गया था।

शराब का आसवन कर ईथाइल एल्कोहॉल सर्वप्रथम 1150 ईस्वी में प्राप्त किया गया था। इसके बाद सम्पूर्ण विश्व में इसका उत्पादन होने लगा थ। **सिरका (vinegar) बनाने का उद्योग सर्वप्रथम 14वीं शताब्दि में फ्रांस में ही 1650 में मशरूम का कृत्रिम उत्पादन** प्रारम्भ हुआ। 1680 में **एनटोनी वान लीयूवेनहुक** ने अपने द्वारा निमित सूक्ष्मदर्शी द्वारा यीस्ट कोशिका को देखा। 1857 में **लुइस पाश्तियोर** (Louis pasteur) ने बताया कि लेक्टिक अम्ल किण्डवन सूक्ष्म जीवों के कारण होता है।

19 वीं शताब्दि के अन्त में जर्मनी व फ्रांस में सूक्ष्म जीवों की मदद से **वाहित मल (sewage) को उपचारित** करने के बड़े-बड़े उपक्रम स्थापित किये जाने लगे थे। बीसवी शताददी के दूसरे दसक में मानव व पशु आहार को औद्योगिक स्तर पर तैयार करने में यीस्ट का उपयोग किया जाने लगा। सूक्ष्म जीवों की मदद से **एसीटोन, ब्यूटेनॉल व ग्लिसरीन** जैसे रसायनों को तैयार किया गया। 1928 में **फ्लेमिंग** ने पेनिसीलिन 1944 में **वाक्समन** ने स्ट्रेप्टोमाइसिन व दुउडर ने क्लोरोटेट्रोसाक्लिन नामक **प्रतिजैविक औषधियाँ** सूक्ष्म जीवों से प्रापत की। 1953 मे **वाटसन व क्रगिक** ने नाभकीय अम्ल DNA **की** संरचना की खोज कर आनुवांशिक अभियान्त्रिकी (Genetic engineering) की नींव रखी। 1962 में कनाड़ा में सूक्ष्म जीवों की सहायता से यूरेनियम का खनन प्रारम्भ किया गया। 1973 में आनुवंशिक अभियान्त्रिकी का प्रथम सफल प्रयोग हुआ। नवे दशक में कई नए **प्रतिजैविक व वैक्सीन** तैयार किए गये। 1982 में आनुवंशिक अभियान्त्रकी की मदद से जैव प्रौद्योगिकी उत्पन्न **इन्सुलिन** का पयोग मानव उपचार में करने की अनुमति ब्रिटेन व अमेरिका में भी गई। इसके बाद **इन्टरफेरान, मोनोक्लोनल वैक्सीन** आदि अनेक जैव प्रौद्योगिक उत्पादों का उपयोग होने लगा। **DNA पुनर्योजन तकनीक** का उपयोग औषधी, मानव स्वास्थ्य, कृषि व उद्योग आदि में बहुलता से किया जाने लगा। आज **विजात संकर (Transginic) पौधे** व जन्तु तैयार कर उनसे उद्योगों का काम लिया जाने लगा है। नित्य नई सफलता के समाचार विश्व के कोने-कोने से मिल रहे हैं।

जैव प्रौद्योगिक का क्षेत्र व महत्त्व

जैव प्रौद्योगिक विज्ञान कानया परन्तु तेजी से विकसित होता क्षेत्र है। कम समय में ही इसकी अनेक शाखाएं विकसित हो चुकी है। आणविक जीव विज्ञान, ऊतक संवर्धन अनुवंशिक अभियान्त्रिकी, पादप रोग विज्ञान आदि इसकी प्रमुख शाखाएं है।

जैव प्रौद्योगिकी में ऊतक संवर्धन तकनीक

कृत्रिम माध्यम में सूक्ष्म जीव पादप या जन्तु कोशिका ऊतक या अंगों संवर्ध

ही ऊतक संवर्धन कहलाता है। अच्छे पादप व जन्तु बड़ी संख्या में उत्पन्न करने में यह तकनीक बहुत उपयोगी सिद्ध हो रही है।

कृषि क्षेत्र में जैव प्रौद्योगिकी

जैव प्रौद्योगिकी ने कृषि क्षेत्र में एक क्रान्ति ला दी है। आनुवंशिक अभियान्त्रकी की सहायता से उत्पन्न विजात संकर पादप रोग प्रतिरोधक, अधिक दक्ष तथा उन्नत पोषक सिद्ध हो रहे हैं। विजात संकर जन्तुओं के शरीर विभिन्न जैव रसायनिक पदार्थों का उत्पादन कराया जा रहा है। ये जैव रसायन पशुओं के दूध, मूत्र, रुधिर से प्राप्त कर औषधि के रूप में प्रयोग में लाये जाते हैं। इस प्राकर के उतपादन को **आणविक कृषि (molecular Farminy)** नाम दिया गया है।

आनुवांशिक अभियान्त्रिकी व जैव प्रौद्योगिकी

आनुवांशिक अभियान्त्रकी वर्तमान में जैव प्रौद्योगिकी का एक महत्त्व साधन सिद्ध हो रही है। आनुवांशिक अभियांत्रिकी द्वारा DNA पुनर्योजन व जीन क्लोनिंग की जाती है। अभी हाल ही में खोजी गई बहुलकारी शृंखला अभिक्रिया (polymerage chain reaction या PCR) के कारण आनुवांशिक अभियान्त्रिकी अनुसन्धान के नये क्षीतिज तैयार कर रही है। विकसित देशों प्रमुख वैज्ञानक अनुसन्धान इसी खेत्र में हो रहा है।

हाइड्रीडोमा व मोनोक्लोनल प्रतिरक्षी

हाइड्रीडोमा विधि से किसी प्रतीरक्षी को शुद्ध रूप में तैयार किया जाता है जिसे किसी विशिष प्रतिजन (Antigen) के विरुद्ध उपयोग में लाया जा सकता है। मोनोक्लोनल प्रतिरक्षी का उपयोग मानव स्वास्थ्य रक्षा व अन्य कार्यों में बहुलावत से किया जाने लगा है।

औषध एवं जैव प्रौद्योगिकी

औषध के क्षेत्र में जैव प्रौद्योगिकी न पैर जमा लिए है। जीवाणु संश्लेषित मानव इन्सुलिन (**ह्यमुलिन**) इनटरफेरोन व अनेक वेक्सीन बाजार में उपलब्ध हैं। DNA Probes व मोनोक्लोनल प्रतिरक्षी का उपयोग रोगों की पहचान हेतु किया जा रहा है। **DNA फिंगर प्रिटिंग तकनीक** का उपयोग हत्यारों, बलातकारियों आदि की पहचान करने में किया जा रहा है।

जैव प्रौद्योगिकी व पर्यावरण

पर्यावरण सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं के समाधान में सूक्ष्म जीवों का उपयोग किया जा रहा है। सूक्ष्म जीव जैव कीटनाशी, जैव उर्वरक, जैवसंवेदक के रूप में काम में लाये जा रहे हैं। कूड़े में से धातुओं को पुनः प्रापत करने, समुद्र पर फैले तेल को साफ करने तथा उद्योगों में जैव निगरानी हेतु भी सूक्ष्म जीवों का उपयोग की जा रहा है।

प्रोटीन (एन्जाइम) अभियान्त्रकी एवं जैव प्रौद्योगिकी

उच्च कोटि के एनजाइम व भण्डारण योग्य प्रोटीन तैयार करने में भी जैव प्रौद्योगिकी का उपयोग किया जाता हैं। इस हेतु प्रोटीन इंजिनियर कम्प्यूटर की सहायता से वांछित प्रोटीन का प्रारूप तैयार करता है इसके बाद उस जीनका सश्लेषण किया जाता है जो

वांछित प्रोटीन का उत्पादन कर सके।

जैव प्रौद्योगिकी एवं बौद्धिक सम्पदा अधिकार

जैव प्रौद्योगिकी के अन्तर्गत नई प्रकार की जीन या नया प्रकार का जीव उत्पन्न कर उससे औद्योगिक उत्पादन प्रापत करना सम्भव हुआ तो प्रश्न उठा कि नई जीव या नए जीव को उत्पन्न करने वाले वैज्ञानिक के अधिकार क्या हैं? इस प्रश्न को सर्व प्रथम खड़ा करने का श्रेय भारतीय मूल के अमेरीकी वैज्ञानिक डॉ. आनन्द एम. यक्रवती को जाता है। **डॉ. आनन्द** ने 12 सितम्बर 1975 को एक नये जीव के निर्माण की घोषण की थी। इसके साथ ही ईश्वर के काम में हसतक्षेप का प्रारम्भ हुआ। नये जीव को **'सुपर बग' (Super Bug)** नाम दिया गया। वास्तव में यह जीवाणु स्यूडोमोनॉस की एक नई जातह है। यह **जीवाणु पेट्रोलियम को समुद्री जीवों के भोजन में बदलने की क्षमता रखता है।**

जब कोई व्यक्ति नया आविष्कार करता है तो उसे पेटेन्ट करा कर कानूनी रूप से सुरक्षित कर लेता है। **डॉ. चक्रवर्ती** के पहले किसी ने सजीव वस्तु के पेटेन्ट के लिए आवेदन नहीं किया था। जीव का प्रकृति की देन मानते हुए उस पर किसी एक व्यक्ति या व्यक्तियों का एकाधिकार कैसे स्वीकृत किया जा सकता है? लम्बी बहस के द्वारा डॉक्टर आनन्द सुपर ब्र को अपना आविष्कार साबित करने में सफल रहे तथा पेटेन्ट प्राप्त किया।

जैव प्रौद्योगिकी द्वारा विकसित विभिन्न विधियों व पदार्थों को बौद्धिक सम्पदा अधिकार के कानूनों के अतर्गत सुरक्षित करने के विषय में अभी एक राय नहीं बन पाई है। किसे पेटेन्छ दिया जाय और किसे नहीं इस पर बहुत विवाद रहता है। फिलहाल इस विषय में मतैकय है कि औषण विज्ञान से सम्बन्धी जैव प्रौद्योगिकी को कानूनी सुरक्षा प्रदान नहीं किया जावे। अतः हृदय शल्य चिकित्सा, अंग प्राचारोपण, कृत्रिम अंग औषधियॉ व वैक्सीन आदि से सम्बन्धित जैव प्रौद्योगिकी को पेटेन्ट नहीं किया जाता। इसी तरह जेविक पीड़कनाशक व शाक नाशक जैव प्रौद्योगिकी को भी पेटेन्ट नहीं किया जाता है।

जैव प्रौद्योगिकी सम्बन्धी बौद्धिक सम्पदा अधिकार को लेकर अभी भी दो मत है। इसके विराधियों को मानना है कि यह कानून साम्राज्यवाद का एक नया हथियार है तथा इसका लाभ विकसित देशों की बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को ही होगा। इनका मानना है कि ये कम्पनियाँ विकासशील देशों में विपुल मात्रा में उपलब्ध आनुवंशिक संपदा को तो मानव जाति की सांझी सम्पत्ति मानती है परन्तु इस जीन भण्डार से कोई जीन अलग कर कोई नही 'किस्म' तैयार कर लेती है तब उसके लिए उन्हें मुंह मांगी कीमत चाहिए।

जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र

क्षेत्र	उत्पादन
आनुवंशिक अभियान्त्रिकी या डी एन.ए. पुनर्योजन तकनीक	प्रतिरक्षी, इन्टरफेरॉन, एन्जाइम, वेक्सीन, वृत्रि हारमोन, परिशुद्ध रसायन
जैव पदार्थ या जैवभार का उत्पादन	माइको प्रोटीन, एक कोशीय प्रोटीन, एल्कोहल व जैव ईधन
नाइट्रोजन स्थिरीकरण	जैव उर्वरक
पादप व जन्तु संवर्धन	परिशुद्ध रसायन जैसे—वाष्पशील तेल, एल्केलॉयड, स्टीरॉइड, कायिक भ्रूण, अन्टरफेशन, संपुटित बीज, एक क्लोनी प्रतिरक्षी
जैव ऊर्जा या जैव ईधन	हाइड्रोजन, एल्केहॉल, मिथेन
किण्डवन	प्रतिरक्षी, विटामिन, एन्जाइम, अमीनो अम्ल, जैवपीड़क नाशी, एथेनॉल, एसीओन, ब्यूटेनॉल, एथीलीन, एसीटल्डीहाइड, कार्बनिक अम्ल,
एन्जाइम अभियान्त्रकी	जैव संवेदी, खाद्य निर्माण, परिशुद्ध रसायन
प्रक्रिया अभियान्त्रिकी	जल पुनर्चक्रण, उत्पाद निष्कर्षण, बहिः स्रावी उपचार।

अध्ययन बिन्दु

ूक्ष्मजीवो, कोशिकांगों जैसे जैविक साधनों का मानव हित में नियन्त्रित उपयोग ी जैव प्रौद्योगिकी है।

ाणविक जीव विज्ञान, ऊतक संवर्धन, आनुवांशिक अभियान्त्रिकी, पादप रोग विज्ञान ादि जैव प्रौद्योगिक की प्रमुख शाखाएँ हैं।

विज्ञान संकर जन्तुओं के शरीर से विभिन्न जैव रसायनिक पदार्थों का उत्पादन कराया जा रहा है। ये जैव रसायन पशुओं के दुध, मूत्र, रुधिर से प्राप्त कर औषधि रूप में प्रयोग में लाये जाते हैं। इस प्रकार के उत्पादन को **आणविक कृषि** Molecular Farming) नाम दिया गया है।

ी एन. ए. प्रोब्स व मोनाक्लोनल प्रतिरक्षी का उपयोग रोगों की पहचान हेतु किया जा रहा है।

ारतीय मूल के वैज्ञानिक डॉ. आनन्द चक्रवर्ती ने सबसे पहले सुपर बग का पेटेन्ट ाप्त किया था

अध्याय–7

विजात संकर जन्तु एवं पौधे

(Transgenic Animalo & Plants)

विजात संकर या ट्रान्सजेनिक जीव एक अविर वसतीप सत्य है। आज से दो दशक पूर्व तक कोई जीव वैज्ञानिक यह कल्पना नहीं कर सकता था कि जूगनू की जीन युक्त मक्का तैयार की जायेगी जो रता के अंधेरे में चमकेगी या मानव इन्सुलिन जीवाणुओं द्वारा तैयार किया जा सकेगा। मगर यह विजात संकर जीवों के रूप में यह सब सम्भव हो चुका है।

पारम्परिक चयनात्मक प्रजनन विधि द्वारा केवल एक ही प्रकार की फसल को ही सकर कर सकते है जैसे कि आलू की एक किस्म को आलू की ही दूसरी किस्म या फिर उसकी किसी जंगली किस्म के साथ ही संकरित किया जा सकता है। पारम्परिक विधि द्वारा यह सम्भव नहीं कि एक जाति की जीन को दूसरी जाती था वंश की जीन के साथ मिला सके। इस विषय में तो सोचा भी नहीं जा सकता कि किसी जन्तु की जीन को किसी पादप कोशिका में डालकर उससे जन्तु उत्पाद प्राप्त किये जा सकेंगे।

अपनी जाति के बाहर के किसी अन्य पादप या अनुयुक्त किसी पादप सया जन्तु कोविजात संकर या ट्रान्सजेनिक कहते हैं।

अब वैज्ञानिक, कम से कम सिद्धान्त रूप में तो आनुवंशिक रूप से कोडित किसी भी विशेषता या ट्रेर को एक जीव से निकाल कर किसी अन्य जीव में डाल सकते हैं। इस जीन स्थानात्रण पर इस बात से कोई असर नहीं पड़ता कि वे जीव आपस में सम्बन्धित है या नहीं। विजात संकर जीवों के उत्पादन का श्रेय आनुवंशिक अभियान्त्रकी को जाता है। आनुवंशिक अभियान्त्रकी का उदय 1980 के दशक में हुआ। केलीफोर्निया के वैज्ञानिकों ने यह खोज कि रेस्ट्रिकशन एन्जाइमों द्वारा डी. एन. ए. (R DNA) बनाया जा सकता है।

जीवाणु, अन्य सूक्ष्म जीव यहाँ तक कि उच्च पादपों की कोशिकाएं भी अपने माध्यम से जीन ग्रहण करती है। कोशिका द्वारा इस प्रकार जीन ग्रहण करना रुपान्तरण या ट्रान्सफोरमेशन (Transfor mation) कहलाता है। जन्तु **कोशिका द्वारा माध्यम से जीन ग्रहण करने को ट्रान्सफेक्शन (Transfection) कहते हैं।**

विजात संकर जन्तु उत्पन्न करने हेतु किसी विशिष्ट कोशिकाक या भ्रूण में ट्रानसफेक्शन करना होवा है क्योंकि जन्तुओं में अण्ड या भ्रूण में ही सम्पूर्ण जीव को

में बदलने की क्षमता रखती है। किसी जन्तु के अण्ड को रुपान्तरित करने हेतु उसमें पूर्ण नाभिक, पूर्ण गुणसूत्र या गुण सूत्र का कोई भाग या फिर DNA का कोई अंश स्थानान्तरित किया जाता है।

(अ) सम्पूर्ण नाभिक या विभाजित भ्रूण का स्थानान्तरण (Transfer of whole nucrie or spict embnyos)—इस विधि में किसी उच्च कोटि के दाता की कायिक कोशिका से सम्पूर्ण केन्द्र ग्राहता कि विकेन्द्रिकृत (enucleated) कोशिका में स्थानान्तरित किया जाता है। एक सूक्ष्म अन्य विधि में उच्चकोटि के दाता के विकसित होते भ्रूण को प्राप्त कर उसे दो भागों में काआ जाता है। इसके बाद प्रत्येक भाग को एक-एक विकेन्द्रीकृत अनिषेचित अण्ड (enucleated unfertiltized eggs) में स्थानान्तरित कर दिया जाता है। इस प्रकार तैयार किये गये अण्ड को किसी स्थानापन्न (Surrogate) माता के गर्भाशय में आगे के विकास हेतु स्थानान्तरित कर दिया जाता है।

(2) एक पूर्ण गुणसूत्र या उसके अंश का स्थानान्तरण—कोशिका विभाजन की मेटाफेज अवस्था सेकिसी वांदित गुण सूत्र को कोशिका से अलग कर लिया जाता है। अब इसे केलशियम फास्फेट के साथ सह अवक्षेपित (म्दजिमर्जूदह) करने के बाद उस कोशिका के साथ ऊष्माचित (घ्हर्मृ) किया जाता है जिसमें गुणसूत्र को स्थानान्तरित करना है। परिणाम स्वरूप गुणसूत्र कोशिका के केन्द्रक में सम्मलित कर लिया जाता है।

(3) डी. एन. ए. का अण्ड में सूक्ष्म अन्तः क्षेपण (DNa microinjection into the egy)—इस विधि में वांछित जीन की बहुत साठी प्रतिलिपियाँ एक साथ निषेचित अण्ड में अन्तक्षेपति की जाती है। यह अन्त क्षेपण अण्ड में नर व स्त्री केन्द्रकों के संगलित होने से पूर्व किया जाता है। वांछित जीन की प्रतियाँ पुनर्योजी प्लाज्मिड का प्रयोग किया जाता है।

(4) भ्रूण में विषाणु वाहित जीन स्थानान्तरण—इस विधि में वांछित जीन किसी विषाणु (virus) से जोड़ कर भ्रूण की कोशिकाओं में प्रविष्ट कराई जाती है। कोशिका में प्रवेश करने के बाद वांछित जीन जीन के जीनोम का भाग बन विजात संकर जीव उत्पन्न करती है।

लक्षित जीन स्थानान्तरण—इस विधि में वांछित जीन को जीव के जीनोम के समजात स्थान को लक्ष्य कर प्रवेश कराया जाता है।

विजात संकर जीवों का महत्त्व
(Importance of Trans genic Dhimab)

विजात संकर जन्तु उत्पन्न करने का पहला समाचार 1982 में आया था। इसके बाद तो एक सिलसिला ही चल पड़ा। अब उपयोगी जन्तुओं की लगभग सभी श्रेणियो में विजात संकर जन्तु उत्पन्न किये जा चुके हैं। गाय, सान्ड, भेड़, बकरी, सुअर, खरगोश, मुर्गा, मछली आदि अनेक प्रकार के जीव विभिन्न उद्देश्यों को लेकर विजात संकर रूप में उत्पन्न किये जा चुके हैं विजात संकर जीवों को उत्पन्न करने के कुछ प्रमुख उद्देश्य निम्न है

(1) जन्तुओं में भोजन उपयोग की दक्षता बढ़ाना।

(2) मांसल जन्तु उत्पन्न करने

(3) जल्दी बाजार में बिकेने योग्य वृद्धि करने की क्षमता उत्पन्न करना।

(4) विभिन्न रोगों के प्रति प्रतिरोध क्षमता उत्पन्न करना।

(5) अधिक दूध उत्पन्न करने क्षमता उत्पन्न करना।

(6) तीव्र वृद्धि दर उत्पन्न करना।

(7) जीवों के शरीर में मानव उपयोगी विभिन्न रसायन उत्पन्न करने की क्षमता उत्पन्न करना। ये पदार्थ इन जीवों के मूत्र, दूध या रक्त से प्राप्त किये जाते हैं। ऐसे जीवों को **जैव रिऐक्टर** (Bio reactor) तथा इस विधि को **आणविक कृषि** (molecular farming) कहते हैं।

(8) विजात संकर भेड़ द्वारा अच्छी किस्म की ऊन उत्पन्न करना।

विजात संकर पादप
(Trasgenic Plants)

आनुवंशिक अभियान्त्रिक के विकास के कारण विभिन्न प्रकार के विजात संकर पादप बनाये गये हैं तथा अभी भी प्रयास जारी है। इन विजात संकर पादपों के कारण मानव हित के विभिन्न क्षेत्रों कृषि, औषण, उद्योग, वानकी, पोषण, पर्यावरण संरक्षक क्षेत्र, वाहितमल उपचार, घरेलम व्यर्थ पदार्थों का रूपान्तरण आदि क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तन समभव हुए है। किसी पौधे के जीनोम में विजाति पादप की जीन को ही समाविचार करने के अतिरिक्त जन्तु जीनों को भी पादपों में प्रवेश कराया गया है। प्रारम्भ में द्वि-बीज पत्री पादप में ही विजात संकरण समभव था परन्तु अब अनेक एक बीज पत्री पादप जैसे गेहूँ, मक्का, चावल आदि के विजात संकर रूप प्राप्त कर लिए गये हैं।

पादपों में जीन स्थानान्तरण विधियाँ
(Gene Transfer methods in Plants)

पादपों में जीन स्थानानतरण की विधि जन्तुओं से अलग है। विजात संकर जन्तु उत्पन्न करने के लिए विजा DNA को भ्रूण कोशिका के प्राक केन्द्रक में सूक्ष्म अन्तःक्षेपण किया जाता है। ऐसा निषेचन के तुरन्त बाद किया जाता है। जन्तुओं के सम्बन्ध में यह विधि इस कारण सम्भव होती है क्योंकि जन्तुओं के लिए विशेष पात्र निषेचन तकनीक (specialized in vitro fertilization technology) उपलब्ध है। इस तकनीक की उपलब्धता के कारण अण्ड, युग्मनज या प्रारम्भिक भ्रूण में दक्षतापूर्ण परिवर्तन करने सम्भव होते हैं।

पादपों में उपरोक्त विधि सम्भव नहीं होती परन्तु पादप कोशिका के **पूर्णशक्तता** (Toti Petancy) के गुण व संवर्धन तकनीक के कारण कोशिका या जीवद्रव्य का उपयोग जीन स्थानान्तरण हेतु किया जाता है। इससे प्राप्त विजात संकर कोशिका या जीवद्रव्य से पुनर्जनन (regenenatioin) द्वारा विजात संकर पादव पूर्ण रूप में प्राप्त किया जा सकत है। लाखों की सख्या में उपलब्ध पादप जातियों तथा प्रत्येक पादप जाति में विपुल मात्र

उपलब्ध **जीन विधिधता** के कारण यह आवश्क हो जाता है कि विभिन्न स्थितियो के अनुरूप विविध तकनीकों का विकास किया जावे।

पादपों में जीन स्थानान्तरण हेतु काम में लाई जाने वाली कुद प्रमुख विधियाँ निम्न प्राकर हैं—

(1) **एग्रोबेक्टिरियम जीन रूपान्तरण तकनीक**—द्वि बीज पत्री पादपों के केन्द्रक मे विजात DNA अंश को पहुँचाने हेतु इस विधि का उपयोग प्रमुख रूप से किया जाता है। इस विधि में एग्रोबक्टिरियम में उपस्थित गुण सूत्र **बाह्य जीन (Plasmid)** का उपयोग विजात DNA के वाहक के रूप में किया जाता है।

(2) **जीन स्थानान्तरण की भौतिक विधियाँ**—पादप कोशिका में विजात DNA पहुॅचाने हेतु अनेक भौति विधियों का भी उपयोग किया जाता है। इनमें से कुछ निम्न हैं—

(i) विजात DNA का सूक्ष्म अन्तः क्षेपण या गुरन अन्त3 क्षेपण (Micro or macroiyeation)

(ii) विघुत धिद्रण (Elctroporation) विधि

(iii) परागकण या परागनाल द्वारा जीन स्थानान्तरण

(iv) शष्क बीज, भ्रूण, ऊतक या कोशिकाओं का विजात DNA में उष्मायन (gucubatioin)

(v) पराश्रवण (utra sonication) द्वारा जीन स्थानान्तरण

(vi) DNA युक्त टंगस्टन या सोने के सूक्ष्म कणों की कोशिका पर बम्बारी द्वारा

विजात संकर पादपों का महत्त्व

अब तक 50 से अधिक प्रजातियों के पौधों को विजात संकर रूप मे प्राप्त किया जा चुका है1 इस क्षेत्र में अनुसन्धान रूचिकर एवं लाभकारी होने के कारण विश्वभर मे इस सन्दर्भ में शोध प्रयास जारी है। इसके परिणाम भी प्राप्त होने लगे है। ऐसी आशा की जा रही है कि 21 वीं शदी के प्रारम्भ में मन पसन्द गुणों वालल वनस्पति व उसके उत्पाद उपलब्ध होंगे। किसी भी पादप से कोई भी नापसन्द लक्षण हटाया जा सकेगा तथा उसके स्थान पर मन पसन्द लक्षण जोड़ा जा सकेगा। विजात संकर पादपों के कुछ प्रमुख उपयोग निम्न हैं—

(1) विजात जीन के स्थानान्तरण द्वारा कृषि तन्त्र को और अधिक दक्ष बनाना सम्भव होगा।

(2) विजात संकरण द्वारा पौधों के ऐसे प्रतिरुप प्राप्त किये जा चुके हैं जो शाकनाशी, कीट, विषाणु आदि का प्रतिरोध करने में सक्षम हो।

(3) विजा संकरण द्वारा कृषि तकनीकों को सरल व सस्ता बनासया जा सकेगा। उदाहरण के लिए इस विधि से **ब्रासिका नेपस** *(prrasica nakeces)* के ऐसे पौधे प्रापत किये गये है जिनके पुष्प में नर अंग बन्ध्य होते है। इनका लाभ **यह है कि संकट बीज प्राप्त करने हेतु किये जाने वाले सकरण पूर्व हाथों से** निपुसन (manual e on)

.हीं करना पड़ता।

(4) विजात संकर पादपों को जैवरिएक्टर या रसायन उद्योग के रूप में प्रयोग कर वांछित रसायन या औषधियाँ प्राप्त करना संम्भव हुआ है। इसे ही आजकल **आणविक कृषि** (moleculor forming) कहते हैं।

(5) जीन शृंखला की नियंमितता की पहचान हेतु भी विजात संकर पादपों का उपयोग किया जाता है।

6. कीटरोधी फसल पादपों की खेती करने पर रसायन कीटनाशियों का उपयोग नहीं करना होगा। इसमें फसल सभी पड़ने के साथ वातावरण की शुद्धता बनी रहेगी।

7. विजात संकरण द्वारा ऐसे पौधे भी तैयार किये जा रहते हैं जो सूखा, गर्मी, सर्दी, ब्रर्फ आदि की मितरीत परिस्थितियों को आसानी से सहन कर सके। उदाहरण के लिए जीवाणु जीन युक्त विजात संकट तम्बाकू में अदम्य लवण सहना पाई जाती है ऐसा मेनीहाल-1-फास्फेट डी हाइड्रोजीनेज जीन के कारण होता है।

8. शाकनाशी रोधाक जीन से युकत पादप की कृषि में हाथ से निनाण कराने का बच जाता है।

भारत में जैव प्रौद्योगिकी वर्तमान स्थिति एवं भावी समभावनाएं

जैव प्रौद्योगिकी अनुसन्धान फिलहाल बहुत मंहगा। अभी वश्व के अतिविकसित देश जैसे संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, जापान व यूरोप के देश ही इस क्षेत्र में अग्रणी अनुसन्धान कर रहे हैं। परन्तु इसका अर्थ वह नहीं की भारत जैसे विकाससील दो जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में कुछ नहीं कर रहे। मैसूर में हए भारतीय विज्ञान कास के 69 के सत्र में वैज्ञानिकों ने जैव प्रौद्योगिकी के महत्त्व को रेखाकित किया था। इसका परिणाम यह हुआ की भारतीय संसद की विज्ञान परामर्शदात्री समिति की अनुशंका पर भारत सरकार ने **राष्ट्रीय नैव प्रौद्योगिक बोर्ड (NBTB)** का गठन किया। इस बोर्ड ने भारत सरकार के विज्ञान प्रोधोगिकी मन्त्रालय के अन्तर्गत कार्य करना प्रारम्भ किया था।

1986 में विषय के महत्त्व को देखते हुए भारत सरकार ने उक्त बोर्ड के **जैव प्रौद्योगिक विभाग** नाम से पूर्ण विभाग का दर्जा प्रदान किया। यह विभाग देशमें चल रही जैव प्रौद्योगिक गतिविधियों में समन्वय व उनके विकास का कार्य कर रहा है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रभाव पर विकसित देशों दो **अन्तर्राष्ट्रीय आनुवंशिक अभियान्त्रिकी एवं जैव प्रौद्योगिकी केन्द्र** (Intar national centre for cenetic Engineeringand Biotecnology) खोले गये। इनमें से एक केन्द्र भारत की राजधानी नई दिल्ली में है। जबकि दूसरा ट्रीसटे (इटली) में है।

भार में जैव प्रौद्योगिकी अनुसन्धान के प्रमुख केन्द्र निम्न प्रकार हैं—

1. लाल बहादुर शास्त्री जैव प्रौद्योगिकी अग्रिम अनुसंधान केन्द्र नई दिल्ली।
2. जैव प्रौद्योगिकी विभाग जवाहर लाल नेहरू विश्व विद्यालय नई दिल्ली।
3. केन्द्रीय खाद्य एवं प्रौद्योगिकी अनुसन्धान संस्थान मैसूर (कर्नाटक)।
4 राष्ट्रीय डेयरी अनुसन्धान संस्थान करनाल (हरियाणा)।

5 मलेरिया अनुसन्धानकेन्द्र दिल्ली

6. क्षेत्रीय अनुसन्धान प्रयोगशाला जम्मू

7. केन्द्रीय औषधी अनुसन्धान संस्थान लखनऊ (उत्तर प्रदेश)

8. केन्द्रीय औषध एवंसुगन्धित पादप अनुसन्धान संस्थान लखनऊ

9. भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर, मद्रास, बोम्बे तथा नई दिल्ली।

10. भारतीय पशु चिकित्सा अनुसन्धान संस्थान इज्जत नगर (उत्तर प्रदेश)।

11. भारतीय विज्ञान संस्थान बेंगलोर (कर्नाटक)

इनके अतिरिक्त देश के कई विश्व विद्यालयों, विभागों व संस्थानों की मदद जैव प्रौद्योगिकी विभाग कर रहा है ताकि वे अपने यहाँ जैव प्रौद्योगिकी सम्बन्धी मूलभूत संरचना की स्थापना कर सके।

भारतीय जैव प्रौद्योगिकी की प्राथमिकताएं

1982 में अन्तर्राष्ट्रीय आनुवंशिक अभियान्त्रकी एवं जैव प्रौद्योगिकी केन्द्र द्वारा नई दिल्ली में एक कार्यशाला आयोजित की गई। उक्त कार्यशाला ने भारत में जैव प्रौद्योगिकी के निम्न क्षेत्रों में अनुसन्धान कार्य करने की प्राथमिका तय की—

(1) जिनोम व्यवसथापन तथा पादपों में पुनर्योगी DNa के स्थानान्तरण हेतु वाहकन।

(2) कृषि महत्त्व की जीन जैसे रोग रोधी, सूजा रोधी, लवण सह्य, उच्च ताप सह्य आदि।

(3) आणविक जीव विज्ञान तथा नाइट्रोजन के स्थिरीकरण हेतु आनुवंशिक अभियान्त्रिकी।

(4) पादप कोशिका—संवर्धन, विभेदन, नियमन, तथा रूपान्तरण।

भारतीय जैव प्रौद्योगिकी अनुसन्धान की उपलब्धियाँ

विभिन्न सतर पर प्रकाशित जानकारी के आधार पर भारतीय जैव प्रौद्योगिकाकी प्रमुख उपलब्धियाँ निम्न प्रकार गिनाई जा सकती है—

(1) विभाजित भ्रूण व भ्रूण स्थानान्तरण विधि का सफलता पूर्वक उपयोग भैंस के अच्छे बछड़ें पैदा कराने में किया गया है।

(2) हैदराबाद के आणविक जीव विज्ञान एवं जैव प्रौद्योगिकी केन्द्र द्वारा DNa फिंगर Print तैयार करने का कार्य श्री लाल जी टण्डन में सफलता पूर्वक किया जा रहा है।

(3) फाइलेरिया की पहचान सम्बन्धी किट चिकित्सा कर्मियों को जारी कर दिया गसया है। अन्य के भी शिघ्र किये जायेंगे।

(4) जन्तु जन्म निरोधकपदार्थ तलसुर (Talsur) का उत्पादन किया गया है जो नर जीवों में अन्तः क्षेपति किया जाता है।

5 जैव प्रौद्योगिकी द्वाराकई वैक्सीनों का उत्पादन किया जा रहा है। इस हेतु रूस के सहयोग से Bharat Immunological & Biological corporation ltd की

स्थापना की बुलन्द शहर में गई है। इसी प्रकार Indian uaccines corporation Ltd. की स्थापना की गई है।

(6) विभिन्न वृक्षों जैसे बाँस, सागवान, चन्दन, यूक्लिप्टस आदि का बड़ी संख्या में सूक्ष्म संवर्धन किया जा रहा है।

(7) विषाणु, जीवाणुव कवक पीड़कनाशकों का उपयोग कीटों के विरुद्ध किया जा रहा है।

(8) राइजोविषम एवं नीली हरी शैवाल की उन्नत किस्मों का प्रयोग जैव उर्वरक के रूप में नाइट्रोजन स्थिरीकरण हेतु किया जा रहा है।

(9) जलीय खाद्य जीवों की कृषि हेतु जल संवर्धन प्रोद्योगिकी विकसित की गई है।

(10) यीस्ट का एक ऐसा प्रतिरूप खोजा गया है जो सामान्य यीस्ट की तुलना में 12–14- एल्कोहॉल का निर्माण करता है।

(11) भारतीय रेशम के उत्पादन एवं गुणात्मक विकास हेतु भी सफल प्रयोग किये गये हैं।

उपरोक्त सफलताओं से प्रेरित हो जैव प्रौद्योगिकी विभाग भारत सरकार ने एक कार्य योजना तैयार की है। इसमें कार्यक्रमो को प्राथमिकता के आधार पर सम्मलित किया या है। इनके पूरा होने पर भारत ग्रामीण क्षेत्रों को लाभ मिलेगा—

(1) वैक्सीन (मौलिक पोलिया वेक्लीन) कार्यक्रम

(2) पाम तेल प्रदर्शन कार्यक्रम

(3) जैवभार वृद्धि कार्यक्रम

(4) प्रतिरक्षी रोग निदान कार्यक्रम

(Immano diagnostics)

(5) जल संवर्धन (Aqua ceeltare) कार्यक्रम

(6) भ्रूण स्थानान्तरण प्रौद्योगिकी

(7) जैव उर्वरक

(8) रेशम कीट पालन

ऐसी आशा की जा रही है कि 21 वीं शदी में भारत जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में बहुत योगदान देगा। सम्भावना है कि जैव प्रौद्योगिकी के कई क्षेत्रों में दक्षिण पूर्व एशिया का नेता बन जावें।

अध्ययन-बिन्दु

1.. अपनी जाति के बाहर के किसी अन्य पादप या जन्तुयुक्त किसी पादप या जन्तु को विजात संकर या ट्रान्सजैनिक कहते हैं।

2. पादप कोशिका द्वारा जीन ग्रहण करना, रूपान्तरण या ट्रान्सफोरमेशन कहलाता है जबकि जन्तु कोशिका द्वारा माध्यम से जीन ग्रहण करने को टान्सफेक्शन कहते

हैं।

3. विजात संकर जीवों का उद्देश्य जीवों के शरीर में मानव उपयोगी विभिन्न रसायन उत्पन्न करने की क्षमता उत्पन्न करना भी है। ऐसे जीवों को जैव रिएक्टर (Bioreactors) तथा इस विधि को आणविक कृषि (Molecular Farming) कहते हैं।
4. अब तक 50 से अधिक प्रजातियों के पौधों को विजात संकर रूप में प्राप्त किया जा चुका है।
5. राइजोबियम एवं नीली हरी शैवाल की उन्नत किस्मों का प्रयोग जैव उर्वरक के रूप में नाइट्रोजन स्थिरीकरण हेतु किया जा रहा है।
6. भारत सरकार ने 8 कार्यक्रमों को प्राथमिकता के आधार पर सम्मिलित किया है—1. वैक्सीन कार्यक्रम, 2. पामतेल प्रदर्शन कार्यक्रम, 3. जैवभार वृद्धि कार्यक्रम, 4. प्रतिरक्षी रोग निदान कार्यक्रम, 5. जल संवर्धन, 6. भ्रूण स्थानान्तरण प्रौद्योगिकी, 7. जैव उर्वरक तथा 8. रेशम कीट पालन

अध्याय–8

जैव विविधता

(Biodiversity)

पृथ्वी पर विविध प्रकार के रूपों में उपस्थित है। एक अनुमान के अनुसार पृथ्वी पर **10 करोड़ जातियों** के जीव पाये जाते हैं। प्रत्येक जाति में भी हजारों की संख्या में विविध प्रारूप मिल जाते हैं। स्पष्ट है कि पृथ्वी का पर्यावरण जैव विवधता से परीपूर्ण है। विज्ञान के इतने विकास के बावजूद अभी तक जैव विविधता का धिकांश भाग अध्ययन सीमा से बाहर है। पृथ्वी पर पाई जाने वाली 10 करोड़ जातियों में से लगभग **14 लाख का** ही वैज्ञानिक नामकरण अब तक हो पाया है।

पृथ्वी के विभिन्न भागों, आवासों में जैव विविधता समान रूप से वितरित नही है। स्थलीय याअलवणीय आवासों में समुद्री आयाम की तुलनाजैव विविधता का बाहुल्य होता है। उष्ण्ण कटिबंधीय (Tropical) क्षेत्र जैव विविधता की दृष्टि से अन्य क्षेत्रों की तुलना में अधिक धनी होते हैं। विभिन्न **जातियों के पौधों या एक ही जाति की भिन्न उपजातियों में पाई जाने वाली भिन्नता भी जैव विविधता के अन्तर्गत आती है।**

मानव अपने लिए उपयोगी पादप जातियों का अध्ययन किया तथा उन्हें संरक्षित करने का प्रयास किया परन्तु जिन जीव जातियों का कोई उपयोग उसे नजर नहीं आया उसकी घोर उपेक्षा की। इसी कारण आज अनेक जीव जातियाँ विलुप्तिरण के कगार पर खडी है। आज मानव यह समझने लगा है कि पृथ्वी पर पाई जाने वाली प्रकृति जीव जाति का इस सजीव दृष्टि को बनाये रखने में कोई न कोई योगदान आवश्यक है। अत हमें पृथ्वी पर पाये जाने वाले प्रत्येक जीव की रक्षा करनी है। उसकी जाति को विलुप्त होने से बचाना है। इसी भावना के अन्तर्गत जैव विविधता का अध्ययन एक विषय बन गया है। जैव **विविधता के अध्ययन के दो उद्देश्य हो सकते है :–**

(1) किसी भी **पादप जाति के पृथ्वी** पर पाये जाने वाले **सभी रूपों के विषय में जानकायी जुटाना।**

(2) ऐसे **विधियों की तलाश करना जिससे उस जाति के** सभी रूपों को संरक्षित **किया जा सके।**

जीवों का विलुप्करण

विलुप्त हो गई है। पुरानी जातियों का विलुपत होना तथा नई जातियों का बनना यह विकास प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण अंग रहा है। पूर्व में नई बनने वाली जातियों की संख्या लुप्त होने वली जातियों की तुलना में अधिक हुआ करती थी। इसी कारण पृथ्वी पर जैव विवधता का विकास हुआ। परन्तु पिछले 150-5200 वर्षों में स्थिति एक दम उल्टी हो गई है। नई जातियों के बनने का क्रम धन सा गया है परन्तु वर्तमान में पाई जाने वाली जातियाँ तेजी से लुप्त होती जा रही है। इस पृथ्वी की जैव विविधता पर संकट के बादल मडराने लगे हैं।

प्राकृतिक जीव जातियों के विलुप्तिरकण के कारण
(Causes of extinction of wild life)

जीव जातियों के विलुप्त होने में प्राकृतिक एवं मानव निर्मित दोनों ही प्रकार के कारण जिम्मेदार रहे हैं—

(i) प्राकृतिक कारण—पादपों व जन्तुओं की ,कई जातियाँ प्राकृतिक परिघटनाओं के कारण विलुप्त हो जाती है। ज्वाला मुखी काफटना, भूकम्प मात्रा, अतिवृष्टि, अनावृशि, जगल की आग, जन्तु व पादप रोग का फैलना, परागण करने वाले जीवों की संख्या में कमी आदि ऐसे प्राकृतिक कारण है जो जीव जातियों के विलुप्त होने के लिए जिम्मेदार है।

(2) मानव निर्मित कारण—वर्तमान में मानव गतिविधियाँ जीव जातियों के विलुप्तिकरण का प्रमुख कारण बनी हुई है। जीवों के प्राकृतिक आवास में परिवर्तन, पालतु पशुओं द्वारा अधिक चारण, घुमकण्ड कृषि, वनीकरण व विवनीकरण, खनन, कृषि, विदेशी जातियों का निवेश आदि ऐसी मानव गतिविधियाँ है जो जीव जातियों के तीव्र विलुप्तिकरण का कारण बन रही है।

संकटग्रस्त जीव जातियों की धारणा
(Concept of endangered species)

अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधन संरक्षण संगठन I.U.C.N. **(International cenion for conser vation of nature and natural Resources)** ने अपने मानदण्ड के अनुसार संकट ग्रसत जीव जातियों की निम्न श्रेणियाँ बनाई है—

(i) संकट ग्रस्त (Endangered)—इस श्रेणी में उन जीव जातियों या वर्गकों (Taxa) को सम्मिलित किया जाता है जो विलुप्तिकरण के कगार पर है तथा उन कारणों या पारिस्थितियों, जो उसके संकट का कारण है की बदल कर ही इन्हें विलुप्त होने से बचाया जा सकता है।

(ii) सुमेद्य (Vcalnerable)—इस श्रेणी में वेजीव जातियाँ रखी गई है जिनके सकट को यदि दूर नहीं किया गया तो वे संकटग्रसत श्रेणी में आ सकती है।

(iii) दुर्लभ (Rare)—इस श्रेणी में वे जीव हैं जो फिलहाल संकट ग्रस्त या **सुभेद्य नहीं है** इस श्रेणी की जातियों के जीवों की संख्या कम होने तथा सीमित क्षेत्र में

ही पाये जाने के कारण कभी भी सकट ग्रस्त या सुभेद्य की श्रेणी मे आने की सम्भावना बनी रहती है।

(iv) **संकटासन्न** (Threatened)–इस श्रेणी में वे जीव जातियाँ आती हैं जो उपरोक्त तीन श्रेणियों में से किसी एक के अन्तर्गत आती हैं परन्तु पर्याप्त सूचनाओं के अभाव में उन्हें निश्चित तौर पर किसी भी श्रेणी में रखना सम्भव नहीं होता।

(v) **संकट मुक्त** (Out of danger)–इस श्रेणी में उन जीव जातियों या वर्गको को रखा जाता है जो पूर्व में संकट ग्रस्त, सुभेद्य या दुर्लभ श्रेणी में थी परन्तु संरक्षण के उपाय करने के कारण अब खतरे से बाहर हो गई है। संकट ग्रस्त जीव जातियों की सूची को Red data book में तथा सुरक्षित स्थानों पर लगाई गई पादप जातियों को हरी पुस्तक (Green book) में सूचीबद्ध किया जाता है।

जीन पूल

किसी जीव संख्या में• उपस्थित समस्त जीव व उनके विकल्पों (allels) को सम्मिलित रूप में जीन पूल (Gene pool) कहा जाता है। जीन पूल से जीन क्षति को **आनुवंशिक अपरदन** (Genetic erogion) कहते हैं। वनों का नष्ट होना, बढ़ता शहरीकरण घुमक्कड कृषि, आनुवंशिक समजात पादपों की खेती, पर्यावरणीय विकिरण आदि आनुवंशिक अपरदन के कुछ प्रमुख कारण हैं।

आनुवंशिक अपरदन को रोकने तथा पादप व जन्तु आनुवंशिक संसाधनों का सरक्षण करने हेतु **निम्न उपाय** किये जाते हैं—

(1) पादपों व जन्तुओं को उनके प्राकृतिक आवास वन में ही रखा जाता है।

(2) यदि प्राकृतिक आवास में रखना सम्भव नहीं हो तो उन्हें उद्यानों व चिड़ियाघरो मे स्थानान्तरित किया जाता है।

(3) जिन पादप जातियों का संरक्षण करना हो उन्हें कृषि, बागवानी में सम्मिलित कर लिया जाता है तथा जन्तुओं को पालतू बना लिया जाता है। इससे उनकी उचित देखभाल होने लगती है।

(4) पादपों को उनके बीच संग्रह के रूप में तथा जन्तुओं को राष्ट्रीय पार्क में सुरक्षित किया जाता है।

उपरोक्त उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु निम्न व्यवस्थाएँ की जाती हैं—

(1) **स्वस्थाने संरक्षण**—इस प्रकार के संरक्षण में (In Site Conservation) किसी क्षेत्र विशेष में पाई जाने वाली प्राणी जातियों या पादप जातियों को उनके स्वाभाविक आवास स्थान पर ही संरक्षण प्रदान किया जाता है। इस हेतु राष्ट्रीय उद्यान, अभयारण्य, वन्य प्राणि अभयारण्य, पक्षी अभयारण्य (Bird Sancturies), प्रकृति संरक्ष्य (Nature Reserves), जैव मण्डल आरक्षित क्षेत्र (Biorpher reserve) आदि स्थापित किये जाते हैं। भारत में इस समय 66 राष्ट्रीय उद्यान व 368 अभयारण्य हैं।

(2) **बाह्यस्थाने संरक्षण** (Exsite conservation)–किसी भी प्राणी या पादप जाति का उनके प्राकृतिकवास स्थान से बाहर प्रजनन करवा कर उसके चुने हुए वंशज को

प्राणी संग्रहालय या वनस्पति उद्यान में सुरक्षित रखने को बाह्य स्थाने संरक्षण कहा जाता है।

विश्व की कुछ विलुप्त प्रायः जन्तु जातियों जैसे पेरे डेविड मृग, यूरोपीय गौर, भारतीय मगर को बाह्यस्थाने संरक्षण प्रदान कर इनकी संख्या में वृद्धि की गई है।

जीन बैंक

जीन बैंक उन संस्थानों को कहते हैं जहाँ उन जीवों को सजीव अवस्था में संरक्षित किया जाता है जिनके वांछित गुण प्राकृतिक वातावरण में लुप्त होने की सम्भावना रहती है। ये जीव बीज, प्रसुप्त पादप अंग, हिमकृत अण्डाणु या शुक्राणु संग्रहित किये जाते हैं। ये जनन द्रव्य (germ plasm) विश्वभर के वैज्ञानिकों को पादपों की नई जातियाँ विकसित करने हेतु उपलब्ध है।

पादप जनन द्रव्य को संरक्षित करने की सर्वाधिक सुविधाजनक विधि उन्हें बीज के रूप में उन परिस्थितियों में संग्रहित करना है जहाँ उनकी सभी उपापचय क्रियाएँ स्थगित हो जावें। बीजों को ऐसी परिस्थिति में रखा जाता है जाम श्वशन एन्जाइमों की गतिविधि के अनुपयुक्त (unfavourable) हो। कम तापक्रम, कम जल अंश (water content) तथा ऑक्सीजन की अल्प उपलब्धता के द्वारा यह सम्भव होता है। बीज में जल अश प्रारम्भ का 5%, तापक्रम -10% से -20°C पर बीजों को लम्बे समय तक संरक्षित किया जा सकता है।

सग्रहण **की दृष्टि से बीज दो प्रकार** के पाये गये हैं—

1. ऑर्थोडोक्स बीज (Orthodox seeds)—तापमान व जल अंश कम होने पर भी इन बीजों पर को विपरीत असर नहीं होता। अनाज व दालें इस श्रेणी में आती हैं।

2. रीकेल्सीट्रेण्ट बीज (Recalcitrant seeds)—इन पर शुष्कन व कम तापक्रम का विपरीत प्रभाव पड़ता है। नारियल, लिचि, रबर, चाप आदि के बीज इस श्रेणी में आते है।

जन्तुओं का जनन द्रव्य हिमकृत संवर्धित कोशिकाएँ, अण्डाणु, शुक्राणु अण्डाशय या भ्रूण ऊतक व कभी-कभी सम्पूर्ण भ्रूण के रूप में किया जाता है। इस तरह संरक्षित जनन द्रव्य का उपयोग नस्ल सुधार के भावी कार्यक्रमों में किया जाता है।

ऊतक संवर्धन—ऊतक संवर्धन द्वारा उन पादपों का जनन द्रव्य संरक्षित किया जाता है जो बीज नहीं बनाते या जिनके बीज जीवनक्षम (viable) नहीं होते। उदाहरण के लिए गन्ना, आलू, केला आदि।

उपयुक्त पोषण माध्यम में रखकर किसी पादप कोशिका के विभाजन द्वारा नए पादप को प्राप्त करना ऊतक संवर्धन कहलाता है। ऊतक संवर्धन के माध्यम से जनन द्रव्य संरक्षित करने के कई लाभ हैं—

(1) यह आर्थिक दृष्टि से कम खर्च वाला है।

(2) कम स्थान में बहुत अधिक प्रकार के जीनो टाइप का संग्रह किया जा सकता है

(3) किसी संकट ग्रस्त या दुर्लभ पादप जाति के पुनर्निवेश करने हेतु इस विधि से बड़ी संख्या में पादप आसानी से तैयार किये जा सकते हैं।

निम्न ताप परिरक्षण

जनन द्रव्य का संरक्षण अत्यन्त निम्न तापक्रम -196°C (तरल नाइट्रोजन का तापक्रम) पर भी किया जाता है। हिमकरण तापक्रम पर जनन द्रव्य का संरक्षण निम्न ताप परिक्षरण (cryo preservation) कहलाता है। निम्न ताप पर संरक्षित जनन द्रव्य की आयु बढ जाती है क्योंकि एन्जाइम गतिविधियाँ बन्द हो जाती है, कोशिका विभाजन रुक जाता है। इस कारण जीव का आनुवंशिक संगठन अपरिवर्तित रहता है।

शस्य जनन द्रव्य के उपयोग के विश्वव्यापी प्रयास

(Global Efforts for utilizing crop germ plarm)

फसलों के कम उत्पादन की समस्या से निपटने हेतु विश्वव्यापी प्रयास किये जाते रहे हैं। इसी के परिणाम स्वरूप अधिक उपज देने वाली गेहूँ व चावल की नई किस्में विकसित की जा सकी है। हरित क्रान्ति के जनक नोबल पुरस्कार विजेता नॉरमन बारलोंग ने अधिक उपज वाली गेहूँ की मैक्सीकन बौनी किस्म को विकसित किया। 1963 में गेहूँ की दो मैक्सीकन किस्में सोनोरा 64 व लेरमा रोजो तथा जापानी किस्म नोरिन 10 को भारत मे उगाने का प्रयास किया गया। ये किस्में भारत के पर्यावरण के अनुसार अनुकूलित नही हो पाई। अतः इनमें परिवर्तन व चयन की विधि द्वारा उपयुक्त किस्म प्राप्त करने के प्रयास डॉ. स्वामी नाथन के नेतृत्व में किये गये। इन प्रयासों के परिणाम स्वरूप गेहूँ की एक ऐसी किस्म प्राप्त हुई जिसने भारत में हरित क्रान्ति को जन्म दिया।

इसी तरह अन्तर्राष्ट्रीय चावल अनुसन्धान संस्थान मनीला व भारतीय कृषि अनुसन्धान सस्थान, नई दिल्ली के सहयोग से चावल की नई किस्म IR-36 का विकास किया गया। इस चावल किस्म में विश्व में चावल की कमी को दूर करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भोजन व चारे के कम समुपयोजिन संसाधन

Under exploited sources of food & fidder

वर्तमान में हमें पादपों की लगभग 3,50,000 जातियों का ज्ञान है परन्तु हम मात्र कुछ सौ का ही हमारे दैनिक जीवन में उपयोग करते हैं। इनमें से भी कुछ का बहुत अधिक समुपयोजन किया गया है। यह वर्तमान की आवश्यकता है जो पादप अभी तक कम समुपयोजित किये गये हैं उनका उपयोग बढ़ाया जावे। हो सकता है वे अभी अधिक उपयोगी नहीं हो परन्तु भविष्य में बढ़ती मानवता की आवश्यकताओं को पूरा करने में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो। इनमें कुछ उदाहरण निम्न हैं—

(i) **ट्रिटिकाल (Triticale)**—ट्रटिकम (गेहूँ) व सेकेल (रायी) के संकरण से मानव द्वारा निर्मित प्रथम पादप/चारे की अच्छी फसल है।

(ii) **Phospho carpus tetra gonolobus**—इसमें 34% प्रोटीन तथा 10% तक तेल होता है। भोजन का महत्त्वपूर्ण भाग बन सकता है।

(iii) **जोजोबा** (Simmondsia chivensis) इसके बीजों में 50% तक तरल

मोम पाया जाता है स्नेहक के रूप में अच्छा उपयोग हो सकता है

(iv) **ग्वायूले** (Parthe hium argentatum)–यह बंजर भूमि पर भी पैदा हो सकता है। इसके दूध से रबर बनता है। प्राकृतिक रबर का भावी स्रोत सिद्ध हो सकता है।

(v) **सुबबूल** (Lencaena)–दलहमी वृक्ष है जो तेजी से उगता व भूमि सुधारता है। पशु आहार का अच्छा स्रोत है।

(vi) **धवा** (Anogeissus)–पशु चारे का अच्छा स्रोत।

नीम, पीपल, बेर, शहतूत, बबूल, महुआ, जमालगोटा आदि अनेक पादपों के नाम इस सूची में जोड़े जा सकते हैं जिनका समुपयोजन करने की अच्छी सम्भावनाएँ हैं। आवश्यकता मेहनत करने की है।

जैव ऊर्जा

प्रारम्भिक मानव को भोजन के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार की ऊर्जा की आवश्यकता नहीं थी। अतिरिक्त ऊर्जा की आवश्यकता उसे तब से होने लगी जब उसने आग जलाना सीखा। उसके बाद ज्यों-ज्यों मानव प्रगति करता गया उसकी ऊर्जा की आवश्यकता बढ़ती गई। आज देश या व्यक्ति की प्रगति का अन्दाज उसके अतरिक्त ऊर्जा के खर्च से लगाया जाता है। आज हमें ईधन, प्रकाश व्यवस्था, मनोरंजन, यातायात, वातानुकूलन, संचार, उद्योग, कृषि आदि अनेकों कार्यों हेतु अतिरिक्त ऊर्जा की आवश्यकता होती है।

अपनी अतिरिक्त ऊर्जा की माँग की पूर्ति हेतु आज मानव विविध ऊर्जा स्रोतों का उपयोग कर रहा है। इन ऊर्जा स्रोतों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—

1 **अनवीनकरणीय ऊर्जा स्रोत** (Non renewable energy sources)

2. **नवीनकरणीय ऊर्जा स्रोत** (Renewable energy sources)

(1) **अनवीनकरणीय ऊर्जा स्रोत**—पेट्रोलियम उत्पाद, कोयला प्रमुख अनवीनकरणीय ऊर्जा के प्रमुख स्रोत हैं। भूमि में इनका भण्डार सीमित है तथा जल्दी ही इसके समाप्त होने की सम्भावनाएँ प्रकट की जा चुकी हैं। इसके अतिरिक्त इन ऊर्जा स्रोतों के अधिक दोहन से पर्यावरण प्रदूषण की अनेक समस्याएँ भी खड़ी होती जा रही हैं।

(2) **नवीनकरणीय ऊर्जा स्रोत**—ये वे ऊर्जा स्रोत जिन्हें पुनः प्राप्त किया जा सकता है। इनमें से अधिकांश पादप उत्पाद हैं। पादपों में यह क्षमता पाई जाती है कि वे सूर्य से प्राप्त प्रकाश ऊर्जा को रसायनिक ऊर्जा में बदल सकते हैं। लकड़ी, जैव गैस, गोबर गैस आदि इसके ही विभिन्न रूप हैं। मगर आज हमारे पास इन नवीनकरणीय संसाधनों की भी कमी है। आवश्यकता इस बात की है कि इन संसाधनों का उत्पादन बढ़ाया जाय तथा प्राप्त साधनों का युक्ति संगत उपयोग किया जाय अन्यथा हम बहुत विकट ऊर्जा सकट में पड़ सकते हैं।

जैवभार शब्द का प्रयोग उन सभी पदार्थों के लिए किया जाता है जो प्रकाश सश्लेषण से प्रापत होते हैं। पृथ्वी पर पहुँचने वाली कुल सौर ऊर्जा का मात्र 0.2 प्रतिशत भाग ही जैव भार में बदला जाता है परन्तु भी इसमें संग्रहित ऊर्जा सम्पूर्ण विश्व में अन्य

ऊर्जा स्रोतों से प्रापत की गई ऊर्जा की दस गुणी होती है।

जैवभार ऊर्जा को दो प्रमुख वर्गों में बाँटा जा सकता है--

(अ) प्राणी ऊर्जा (Animal energy)

(ब) जैव ईधन (Biofuels)

प्राणी ऊर्जा (Animal energy)

प्राणी ऊर्जा के भी दो रूप हैं—

(i) **मानव मांसपेशी शक्ति** (Human muscle power)

(ii) **प्राणी प्राप्त शक्ति** (Draught animal power)

मानव मांसपेशी शक्ति आज भी हमारी कुल शक्ति का एक बड़ा अंश है। सम्पूर्ण विश्व में आज भी मानव मांसपेशी शक्ति का उपयोग किया जा रहा है। मशीनीकरण के कारण इस शक्ति का महत्त्व कुछ कम हुआ है परन्तु हमारी आवश्यकता को देखते हुए इसका अच्छा उपयोग किया जा सकता है। घर में काम करती महिला, बगीचे में काम करता मजदूर, खेत में काम करता किसान सभी मानव मांसपेशी शक्ति के उदाहरण हैं।

ऊर्जा स्रोत के रूप में पशुओं की भूमिका को भी कम करके नहीं आंका जा सकता। मोटर के प्रचलन के बाद इस ऊर्जा स्रोत का महत्त्व कुछ कम हुआ है परन्तु फिर पशु हमारे ग्रामीण क्षेत्रों पशु ऊर्जा का एक प्रमुख स्रोत बने हुए हैं। एक अनुमान है कि भारत में रेल उद्योग में जितनी पूँजी लगी है उतनी ही पूँजी बैल गाड़ियों में लगी है। कुए से पानी खींचने व माल ढोने में पशु प्राप्त ऊर्जा का आज भी बहुत उपयोग किया जा रहा है। अच्छे पशु व उन्नत बैलगाड़ी व रहट तैयार कर हम इस नवीनकरणीय ऊर्जा स्रोत को और भी लोकप्रिय बना सकते हैं। इस पेट्रोलियम जैसे अनवीनकरणीय स्रोतों पर हमारी निर्भरता कम होगी।

जैव ईधन (Bio fuels)

ऊर्जा का सर्वाधिक प्राचीन स्रोत जैव ईधन ही है। सर्व प्रथमः लकड़ी को जलाकर ही मानव ने आग की खोज की थी। जैव ईधन को तीन समूहों में बाँटा जा सकता है—

(1) लकड़ी

(2) व्यर्थ पदार्थ

(3) पेट्रोलियम व एल्कोइल उत्पन्न करने वाले पादप

लकड़ी (wood)

प्राचीनकाल से ही लकड़ी का प्रयोग सरलतम प्राप्य एवं उपयोग्य ईधन के रूप में होता रहा है। आज भी ग्रामीण क्षेत्र का प्रमुख ईधन स्रोत लकड़ी ही है। आज देश में घटते जंगलों का एक प्रमुख कारण ईधन लकड़ी के लिए वनों की कटाई है। यह बात आज हमारे सामने एक बड़ी समस्या के रूप में उपस्थित है। सर्वत्र सुलभ धुंआ व गन्ध रहित रूप से आसानी से जलने वाली लकड़ी ही अच्छा ईधन कही जा सकती है।

वर्तमान में चल रही ईधन लकड़ी की कमी को दूर करने हेतु निम्न उपाय किये जा सकते हैं

1. अच्छी ईधन लकड़ी देने वाले वृक्षें को बड़ी संख में उगाया जाय। इसे ही ऊर्जा वृक्षारोपण कहा जाता है।

2. वैज्ञानिक विधि से तैयार धुंआ रहित चूल्हों का प्रयोग को बढ़ाया जाय ताकि उपलब्ध ईधन लकड़ी का समुचित उपयोग हो सके।

3. लकड़ी को कोयले, गैस या ताप रसायन परिवर्तन की विधियों को प्रोत्साहित किया जाय।

ऊर्जा वृक्षारोपण हेतु निम्न उपाय किये जाने चाहिए—

(i) कृषि के उपयोग के बाद शेष बची भूमि पर अधिकाधिक वृक्षारोपण किया जाय।

(ii) वृक्षों की ऐसी प्रजातियों का उपयोग ऊर्जा वृक्षारोपण हेतु किया जाय जो बहु उपयोगी होने के साथ-साथ विभिन्न प्रकार की भूमि पर सरलता से विकसित की जा सकती हो।

(iii) ऐसी विधियाँ विकसित की जायें ताकि वृक्षों के बीच-बीच में पशु आहार की फसलें प्रापत की जा सकें।

व्यर्थ जैव भार से ऊर्जा
Energy from waste Bio mass

घरों, खेतो व उद्योगों में ऐसा बहुत-सा जैवभार व्यर्थ रूप में बच जाता है जिसे कचरे के रूप में बाहर फेंक दिया जाता है। इन व्यर्थ पदार्थों में भी बहुत अधिक मात्रा में ऊर्जा निहित खेती है। प्रकृति में इनका अपघटन होने पर यह ऊर्जा ऊष्मा या अन्य रूप में बाहर आती है परन्तु उसका मानव हित में कोई उपयोग नहीं होता। वर्तमान मे ऐसी कई तकनीकें विकसित हो गई हैं जिनके द्वारा व्यर्थ समझे जाने वाले जैव भार से काफी ऊर्जा प्रापत की जा सकती है। व्यर्थ जैव भार से उपयोगी ऊर्जा प्राप्त करने की प्रमुख विधियाँ निम्न प्रकार हैं—

(i) **जैव गैस**—जैव गैस बनाने में पशुओं का मल, मूत्र, कृषि उद्योग के व्यर्थ बचे पदार्थ, बगासे, पेड़-पौधों के व्यर्थ भाग, व्यर्थ रूप में उपजी वनस्पति, जलीय पादप जैसे जल कुम्भी, व्यर्थ कागज, रसोई घर के व्यर्थ पदार्थ आदि अनेकानेक पदार्थों का उपयोग जैव गैस बनाने में किया जा सकता है। इन पदार्थों का अराचु किण्डवन (Anaerobic fermentation) कराने पर जैव गैस उत्पन्न होती है। जैव गैस में मिथेन, कार्बन डाई ऑक्साइड, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, हाइड्रोजन सल्फाइड गैसें होती हैं। इसमे मिथेन का भाग 50 से 70 प्रतिशत होता है। 50 प्रतिशत मिथेन होने पर भी यह गैस 4429 किलो कैलोरी प्रति घन मीटर की दर से ऊर्जा उत्पन्न करती है।

भारत में पशुओं के मल मूत्र के रूप में ही इतना व्यर्थ जैव भार उत्पन्न होता है कि उससे 2242.5 क्रोड़ घनमीटर जेव गैस उत्पन्न की जा सकती है। परन्तु पर्याप्त जन चेतना के अभाव में इस जैव भार का समुचित उपयोग नहीं हो रहा। **जैव गैस के निम्न लाभ है**

(1) जैव को समहित करके रखा जा सकता है जिसका उपयोग

दक्षता से किया जा सकता है।

(2) ईधन के रूप में उपयोग लाने के अतिरिक्त भी कई अन्य कार्यों में इसका उपयोग किया जा सकता है।

(3) जैव गेस बनाने के बाद जो कार्बनिक पदार्थ शेष बचता है वह एक अच्छा उर्वरक होता है।

(4) जैव गैस बनाने में पशुओं के मल मूत्र का उपयोग कर लिया जाता है अत मल मूत्र में उपस्थित हानिकारक जीवाणु के फैलने तथा हानि पहुँचाने की सम्भावनाएँ कम हो जाती हैं।

(5) कई हानिकारक रोगाणु अनुकूल ऋतु के समाप्त होने पर पशुओं के मल मूत्र मे सुरक्षित पड़े रहते हैं तथा पुन: अनुकूल ऋतु आने पर रोग फैलाते हैं। जैव गैस उत्पादन में पशुओं के मल मूत्र का उपचार हो जाता है जिससे यह सम्भावना क्षीण हो जाती है।

स्पष्ट है कि जैव गैस का उत्पादन हमारे यहाँ की परिस्थियों के बहुत अनुकूल है। अतः अधिकाधिक जैव गैस संयन्त्र लगाये जाने चाहिए।

पेट्रोलियम गैसें पदार्थों का उत्पादन

पेट्रोलियम से प्रापत विभिन्न पदार्थ जैसे डीजल, पेट्रोल, केरोसीन, तरल पेट्रोलियम गेस आदि का हमारे जीवन में महत्त्व बहुत बढ़ गया। पेट्रोलियम पदार्थों की कीमतें बढ़ाने का नाम लेते ही अन्य पदार्थों की कीमतें बढ़ जाती हैं। पेट्रोलियम पदार्थ अनवीनकरणीय हैं। हमारे देश में इनका दोहन आवश्यकता से बहुत कम होने के कारण विदेशों से आयात करना पड़ता है। इस कार्य में बहुत अधिक विदेशी मुद्रा खर्च होती है।

विश्व के अधिकांश देशों की स्थिति हमारे जैसी ही है। अत: विश्व के विभिन्न भागों में पेट्रोलियम का कोई नवीनकरणीय विकल्प खोजने के प्रयास वर्षों से चल रहे हैं। इन प्रयासों के अन्तर्गत ही ऐसे कई पादप सामने आये हैं जिनके स्राव पेट्रोलियम उत्पादों का विकल्प बन सकते हैं। **यूफोरबिएसी कुल व एस्कले पिडेसी कुल के लैटेक्स उत्पन्न** करने वाले पादपों की बड़ी आशा के साथ देखा जा रहा है। यूफोरबिएसी का थोर **(यूफोरबिया)** व एस्क्लेपिडेसी का आक हमारे यहाँ प्रकृति में उगने वाले परिचित पादप हैं। कुछ अन्य कुलों जैसे एनाकारगिएसी, एपोसाइनेसी, केप्रीफोलिएसी, कम्पोजीटी, लेबिएटी, सपोटेसी, अरटीकेसी, आदि कुलों के कुछ पादपों में भी पेट्रोलियम से मिलते जुलते पदार्थ प्राप्त हुए हैं। यूफोरबिएसी कुल के पादप जट्रोफा कुरकास (जमालघोटा या सफेद अरण्ड) के तेल को डीजल के रूप में काम लाया जा सकता है। कई मानों में जमालघोटा तेल डीजल से भी अच्छा साबित हुआ है। पेट्रोलियम के विकल्प के रूप में देखे जाने वाले अधिकांश पादप व्यर्थ भूमि पर आसानी से उगाये जा सकते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि परम्परागत कृषि को छोड़ नई फसलों को उगाने की है।

ईंधन के रूप में एल्कोहॉल

पेट्रोलियम का एक अच्छा विकल्प है इथाइल एल्कोहल। शराब के रूप में इसका उत्पादन अति से होता रहा है 95% एल्कोहल को सीधे पेट्रोल के रूप में

.नो को चलाने में उपयोग में लाया जा सकता है। एल्कोहॉल को पेट्रोल में मिला कर ाहोल के रूप में भी वाहन ईधन के रूप में काम में लाया जा सकता है। द्वितीय विश्व . के समय हैदराबाद में गैसों हॉल के पम्प स्थापित किए थे। ब्राजील आदि कुछ देशों वाहन ईधन के रूप में एल्कोहॉल का प्रयोग किया जा रहा है।

शर्करा व मण्ड उद्योग के व्यर्थ पदार्थों से एल्कोहॉल बनाया जा सकता है। पेट्रोल स्थान पर एल्कोहॉल का उपयोग करने पर ईधन खर्च कम आता है, शक्ति अधिक न्न होती है तथा प्रदूषण कम फैलता है। एल्कोहॉल का उपयोग वाहन ईधन के रूप करने पर रोजगार के साधन भी बढ़ेगे। भारत सरकार द्वारा नीतिगत निर्णय करने पर यह सम्भव है।

अध्ययन बिन्दु

जैव विविधता के अध्ययन के दो उद्देश्य हो सकते हैं—

(i) किसी भी पादप जाति के पृथ्वी पर पाये जाने वाले सभी रूपों के विषय में जानकारी जुटाना।

(ii) ऐसी विधियों की तलाश करना जिससे उस जाति के सभी रूपों को संरक्षित किया जा सके।

I.U.C.N.- International Union for Consevation of nature and natural Resources.

अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधन संरक्षण संगठन

संकट ग्रस्त जीव जातियों की निम्न श्रेणियाँ बनाई गयी हैं—संकटग्रस्त, सुभेद्य, दुर्लभ, संकटासन्न व संकट मुक्त।

जीन पूल—किसी जीव संस्था में उपस्थित समस्त जीन व उनके विकल्पों को सम्मिलित रूप में जीन पूल कहा जाता है।

आनुवांशिक अपरदन—जीन पूल से जीन क्षति को आनुवांशिक अपरदन कहते हैं।

जीन बैंक उन संस्थाओं को कहते हैं जहाँ उन जीवों को सजीव अवस्था में संरक्षित किया जाता है जिनके वांछित गुण प्राकृतिक वातावरण में लुप्त होने की संभावना रहती है।

ऊर्जा स्रोतों को दो वर्गों में बाँटा गया है—

(i) अनवीनकरणीय ऊर्जा स्रोत

(ii) नवीनकरणीय ऊर्जा स्रोत

यूफोरबिएसी व एस्क्लेपीडेसी कुल के पादपों में लैटेक्स पाया जाता है। इन पादपों को पेट्रोलियम के विकल्प के रूप में उपयोग की संभावनायें प्रकट की जा रही है।